जिनभाषित

वीर निर्वाण सं. 2535

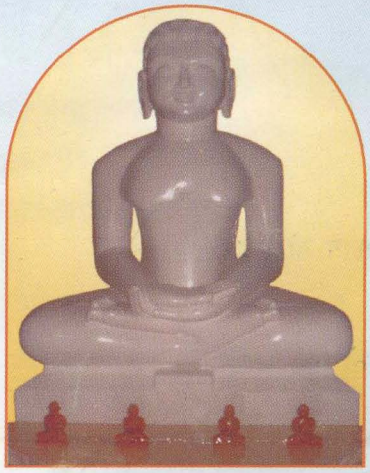

लन्दन-स्थित दिगम्बर जैन मन्दिर
. तथा उसमें विराजमान भगवान् महावीर

वि.सं. 2065

जनवरी, 2009

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

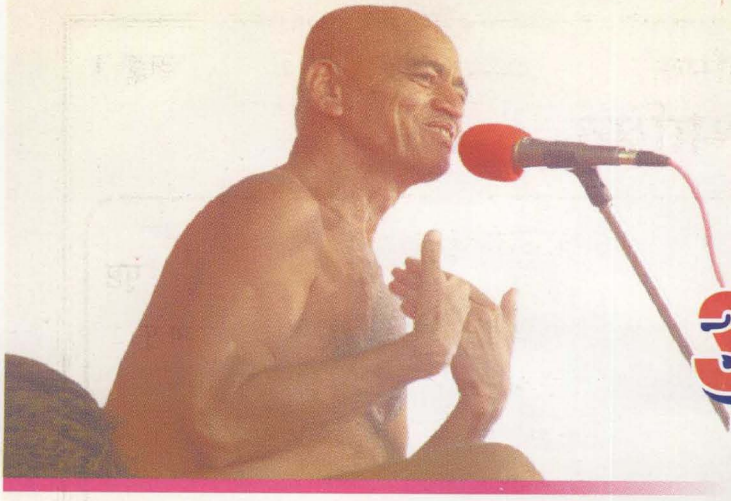

अरे कंकरो!

आचार्य श्री विद्यासागर जी

अरे कंकरो!
माटी से मिलन तो हुआ
पर
माटी में मिले नहीं तुम!
माटी से छुवन तो हुआ
पर
माटी में घुले नहीं तुम!
इतना ही नहीं,
चलती चक्की में डालकर
तुम्हें पीसने पर भी
अपने गुण-धर्म
भूलते नहीं तुम!
भले ही
चूरण बनते, रेतिल,
माटी नहीं बनते तुम!
जल के सिंचन से
भीगते भी हो
परन्तु, भूलकर भी
फूलते नहीं तुम!
माटी सम
तुम में आती नमी नहीं
क्या यह तुम्हारी
है कमी नहीं?
तुम में कहाँ है वह
जल-धारण करने की क्षमता?
जलाशय में रह कर भी
युगों-युगों तक
नहीं बन सकते
जलाशय तुम!
मैं तुम्हें
हृदय-शून्य तो नहीं कहूँगा
परन्तु
पाषाण-हृदय अवश्य है तुम्हारा,
दूसरों का दुःख-दर्द
देखकर भी
नहीं आ सकता कभी
जिसे पसीना
है ऐसा तुम्हारा
.....सीना!

मूकमाटी (पृष्ठ ४९-५०) से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रजि. नं. UPHIN/2006/16750

जनवरी 2009 | मासिक | वर्ष 8, अङ्क 1

जिनभाषित

सम्पादक
प्रो. रतनचन्द्र जैन

◆

कार्यालय
ए/2, मानसरोवर, शाहपुरा
भोपाल- 462 039 (म.प्र.)
फोन नं. 0755-2424666

◆

सहयोगी सम्पादक
पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया, मदनगंज किशनगढ़
पं. रतनलाल बैनाड़ा, आगरा
डॉ. शीतलचन्द्र जैन, जयपुर
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन, बड़ौत
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन, लखनऊ
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती', बुरहानपुर

◆

शिरोमणि संरक्षक
श्री रतनलाल कँवरलाल पाटनी
(मे. आर.के.मार्बल)
किशनगढ़ (राज.)
श्री गणेश कुमार राणा, जयपुर

◆

प्रकाशक
सर्वोदय जैन विद्यापीठ
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा-282 002 (उ.प्र.)
फोन : 0562-2851428, 2852278

◆

सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	1100 रु.
वार्षिक	150 रु.
एक प्रति	15 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

- ◆ काव्य : अरे कंकरो! : आचार्य श्री विद्यासागर जी — आ.पृ. 2
- ◆ बिहारी की गजल : उम्र जलवों में बसर हो : स्व. श्री बिहारीलाल जी जैन — आ.पृ. 3
- ◆ मुनिश्री क्षमासागर जी-संस्मरण प्रसंग
  प्रवचन के पॉइन्ट : प्रस्तुति- सरोज कुमार — आ.पृ. 4
- ◆ **सम्पादकीय** : वास्तुशास्त्र और कर्मसिद्धान्त — 2
- ◆ **लेख**
  - वास्तुदेव : स्व० पं० मिलापचन्द्र जी कटारिया — 8
  - गृहचैत्यालय : स्वरूप एवं सावधानियाँ : पं० सनतकुमार विनोदकुमार जैन — 10
  - मत ठुकराओ, धर्म सिखाओ, गले लगाओ : आचार्यश्री विद्यानंदी मुनि — 14
  - प्रतिमाओं का स्पर्श करना आगम अनुकूल नहीं : आचार्यश्री मेरुभूषण जी — 19
  - चार अनुयोग : ब्र० कु० प्रभा पाटनी (संघस्थ) — 21
  - वृद्धावस्था जीवन का फाइनल-एक्जामीनेशन : पं० बसन्त कुमार जैन, शास्त्री — 24
  - हमारे नौनिहालो को बीमार करते खिलौने : डॉ० ज्योति जैन — 25
  - कोशिश करने पर लंदन में भगवान् का मंदिर मिल ही गया : निर्मलकुमार पाटोदी — 26
- ◆ **जिज्ञासा-समाधान** : पं. रतनलाल बैनाड़ा — 28
- ◆ **ग्रन्थ समीक्षा** : स० सि० अरिहंत जैन — 18
- ◆ **समाचार** — 20, 23, 27, 32
- ◆ **आपके पत्र** — 31, 32

लेखक के विचारों से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है।
'जिनभाषित' से सम्बन्धित समस्त विवादों के लिये न्यायक्षेत्र भोपाल ही मान्य होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्पादकीय

वास्तुशास्त्र और कर्मसिद्धान्त

अधोलिखित जिनवचन भी विचारणीय हैं

जिनभाषित के प्रस्तुत अंक में हम युवा, अनुभवी, प्रतिष्ठा-प्रवीण एवं सुप्रसिद्ध विद्वद्वय प्रतिष्ठाचार्य पं० सनतकुमार विनोदकुमार जी जैन का वास्तुविज्ञान-विषयक एक लेख प्रकाशित कर रहे हैं। उसका शीर्षक है 'गृहचैत्यालय : स्वरूप एवं सावधानियाँ।' इसमें विद्वद्वय ने गृहचैत्यालय-निर्माण में अनेक वास्तुशास्त्रीय नियमों का पालन आवश्यक बतलाया है, जो समीचीन है। उक्त नियमों के पालन से गृहचैत्यालय में स्थापित जिनप्रतिमा की अविनय तथा चैत्यालय की अशुद्धि का प्रतीकार होता है।

किन्तु उन्होंने और अन्य सभी जैन वास्तुशास्त्रियों ने आर्यिका श्री विशुद्धमति जी कृत **वत्थुविज्जा** (पृ. १७०) में उद्धृत दो श्लोक उद्धृत कर जो यह बतलाया है कि गृह, देवालय आदि का निर्माण वास्तुशास्त्र के विपरीत होने पर निर्माता एवं गृहवासियों का आयुनाश, मनस्ताप, पुत्रनाश तथा कुलक्षय आदि अनिष्ट होते हैं, वह जिनोपदिष्ट कर्मसिद्धान्त के अनुकूल नहीं है। वत्थुविज्जा में उद्धृत वे श्लोक इस प्रकार हैं-

प्रासादो मण्डपश्चैव विना शास्त्रेण यः कृतः।
विपरीतं विभागेषु योऽन्यथा विनिवेशयेत्॥
विपरीतं फलं तस्य अरिष्टं तु प्रजायते।
आयुर्नाशो मनस्तापः पुत्रनाशः कुलक्षयः॥

आर्यिकाश्री ने यह श्लोक किस प्राचीन ग्रन्थ से लिया हे, उसका रचयिता कौन है, वह जैन है या अजैन? इसका उल्लेख नहीं किया। उपर्युक्त विद्वद्वय ने अपने कथन के समर्थन में **उमास्वामि-श्रावकाचार** के निम्न पद्य भी उद्धृत किये हैं-

गृहे प्रविशता वामभागे शल्यविवर्जिते।
देवतावसरं कुर्यात्सार्धहस्तोर्ध्वभूमिके॥ ९८॥
नीचैर्भूमिस्थितं कुर्याद् देवतावसरं यदि।
नीचैर्नीचैस्ततोऽवश्यं सन्तत्यापि समं भवेत्॥ ९९॥

अनुवाद-"घर में प्रवेश करते हुए शल्यरहित वामभाग में डेढ़ हाथ ऊँची भूमि पर देवता का स्थान बनाना चाहिए। यदि देवता का स्थान नीची भूमि पर बनाया जायेगा, तो गृहस्वामी और उसकी सन्तान का उत्तरोत्तर अधःपतन अवश्य ही होगा।"

यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि इस ग्रन्थ के कर्त्ता तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वामी नहीं हैं, अपितु ईसा की सोलहवीं-सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में हुए कोई भट्टारक हैं, जिन्होंने अपने कथन को प्राचीन और प्रामाणिक सिद्ध करने के लिए ग्रन्थ को उमास्वामी द्वारा रचित बतलाया है। (देखिये, 'श्रावकाचारसंग्रह' भाग ४/'ग्रन्थ और ग्रन्थकार का परिचय'- पं० हीरालाल जी जैन शास्त्री/पृ. ३८-४१)।

इस ग्रन्थ के रचयिता भट्टारक महोदय के कथन को हम तब तक प्रामाणिक नहीं मान सकते, जब तक वह तत्त्वार्थसूत्रकार उमास्वामी सदृश किन्हीं प्राचीन आचार्य के वचन से प्रमाणित न हो।

वास्तुशास्त्रियों का कथन जिनोपदेश के विरुद्ध

प्रायः सभी जैन-अजैन वास्तुशास्त्री, बतलाते हैं कि गृह का द्वार अमुक दिशा में होना चाहिए, रसोईघर, स्नानगृह, कुआँ-टयूबवेल, सीढ़ियाँ, अध्ययनकक्ष, शयनकक्ष आदि अमुक-अमुक दिशा में होने चाहिए। यदि ये चीजें वास्तुशास्त्रोक्त दिशा से विपरीत दिशा में होती हैं, तो गृहस्वामी की अपमृत्यु, कुलक्षय, धनक्षय, व्यापार-नौकरी आदि में विफलता या हानि, तथा अन्य अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःख होते हैं। किन्तु वास्तुशास्त्रियों का यह कथन जिनोपदिष्ट कर्मसिद्धान्त के सर्वथा विपरीत है। जिनागम क्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कहता है, इस पर दृष्टिपात किया जाय।

आचार्य **कुन्दकुन्दकृत समयसार** की २५३वीं गाथा से लेकर २५६वीं गाथा तक, चार गाथाओं का अभिप्राय बतलाते हुए टीकाकार **अमृतचन्द्रसूरि** कहते हैं-

सर्वं सदैव नियतं भवति स्वकीयकर्मोदयान्मरणजीवितदुःख-सौख्यं।
अज्ञानमेतदिह यत्तु परः परस्य कुर्यात् पुमान् मरणजीवित दुःखसौख्यम्॥ १६८॥

अनुवाद-"जीवों के जन्म, मरण, सुख और दुःख सदा अपने ही कर्मों के उदय से नियत होते हैं। कोई दूसरा पुरुष या द्रव्य जीव के जन्म, मरण, सुख और दुःख का कर्त्ता होता है, ऐसा मानना अज्ञान है।

आचार्य अमितगति ने भी कहा है-

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता, परो ददातीति कुबुद्धिरेषा।
अहं करोमीति वृथाभिमानः स्वकर्मसूत्रग्रथितो हि लोकः॥

अनुवाद-'जीव को सुख और दुःख कोई दूसरा द्रव्य नहीं देता। दूसरा द्रव्य जीव को सुख-दुःख देता है, ऐसा मानना कुबुद्धि है। अतः 'मैं दूसरे को सुखी-दुखी करता हूँ,' ऐसी मान्यता निरर्थक अभिमान है। लोक के सभी जीव स्वकृत कर्मों के सूत्र में बँधे हुए हैं, अर्थात् स्वकृत कर्मों के उदय से ही जीव को सुख-दुःख होता

कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा में भी कहा गया है-

ण य को वि देदि लच्छी, ण को वि जीवस्स कुणदि उवयारं।
उवयारं अवयारं कम्मं पि सुहासुहं कुणदि॥ ३१९॥

अनुवाद-"न तो कोई दूसरा द्रव्य जीव को लक्ष्मी देता है, न कोई जीव का उपकार करता है। उपकार और अपकार जीव के अपने ही शुभाशुभ कर्म करते हैं।"

इन जिनवचनों से सिद्ध है कि वास्तुशास्त्र के अनुकूल या प्रतिकूल निर्मित गृह परद्रव्य है। **वह जीव के द्वारा किया गया अपना शुभाशुभ कर्म नहीं है।** इसलिए उसमें स्वनिवासी जीव को सुख-दुःख देने की सामर्थ्य नहीं है।

वास्तुशास्त्र-प्रतिकूल गृह की प्राप्ति भी सातावेदनीय के उदय से

उपर्युक्त तथ्य का निषेध न कर पाने के कारण कुछ जैनवास्तुशास्त्री यह तर्क देते हैं कि जिस मनुष्य के असातावेदनीय का उदय होता है, उसे वास्तुशास्त्र-प्रतिकूल गृह प्राप्त होता है और जिसके सातावेदनीय का उदय होता है, उसे वास्तुशास्त्र-अनुकूल गृह की प्राप्ति होती है। इसलिए वास्तुशास्त्र-प्रतिकूल गृह में वास करने से अनेक प्रकार के दुःखों की उत्पत्ति होती है। यह तर्क तर्कसंगत नहीं है, क्योंकि जिनागम में दुःखनिवारक सामग्री का सम्पादन करनेवाले कर्म को सातावेदनीय कहा गया है- "**दुक्खपडिकारहेतुदव्वसंपादयं --- कम्मं सादावेदणीयं णाम।**" (धवला / पु.१३ / ५, ५, ८८ / पृ. ३५७)। और वास्तुशास्त्र-प्रतिकूल गृह भी शीत, आतप, वर्षा आँधी-तूफान, थकान, हिंस्रजीवों के उपद्रव, धनापहरण, प्राणापहरण, शीलापहरण आदि से उत्पन्न दुःखों के निवारण का साधन है। यह प्रत्यक्ष प्रमाण (सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष) से सिद्ध है। अतः उसकी प्राप्ति सातावेदनीय के उदय से ही होती है। उसका अपमृत्यु, कुलक्षय, धनक्षय आदि का कारण होना न तो प्रत्यक्षप्रमाण से सिद्ध है, न आगमप्रमाण से। जो तत्त्व अतीन्द्रिय होता है, उसकी सत्यता सर्वज्ञ के वचनों से ही सिद्ध होती है, छद्मस्थ के वचनों से नहीं।

साता-असाता कर्मों के उदय का निमित्त भी नहीं

कुछ जैनवास्तुशास्त्री कहते हैं कि जीवकृत कर्मों का उदय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव के निमित्त से होता है। वास्तुशास्त्र के अनुकूल और प्रतिकूल निर्मित गृह द्रव्य हैं, अतः वे स्वनिवासी जीव के साता-असाता-वेदनीय कर्मों के उदय में निमित्त बनते हैं और इस प्रकार जीव के सुख-दुःख के कारण होते हैं।

यह तर्क **जिनागम** की कसौटी पर खरा नहीं उतरता। इसके निम्न लिखित कारण हैं-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. **गोम्मटसार-कर्मकाण्ड** के निम्नलिखित गाथांश में उन द्रव्यों का वर्णन किया गया है, जो साता-असातावेदनीय कर्मों के उदय में निमित्त (नोकर्म) होते हैं-

सादेदरणोकम्मं इट्ठाणिट्ठण्णपाणादि॥ ७३॥

अनुवाद- ''सातावेदनीय के उदय के नोकर्म (निमित्तभूत द्रव्य) इष्ट (रुचिकर) भोजन-पान आदि तथा असातावेदनीय के उदय के नोकर्म अनिष्ट (अरुचिकर) भोजन-पान आदि हैं।''

इस गाथांश के अनुसार जिनागम में उन्हीं द्रव्यों को जीव के साता-असाता कर्मों के उदय का निमित्त बतलाया गया है, जिनमें इन्द्रियों से सम्पर्क होते ही, या जिनका मन में विचार आते ही, जीव को सुख या दुःख की अनुभूति कराने की योग्यता होती है। जैसे रसनेन्द्रिय का मिष्टान्न से संसर्ग होने पर सुख का और नीम के पत्तों की चटनी से संसर्ग होने पर दुःख का अनुभव होता है, अथवा जैसे ग्रीष्म में शरीर से शीतल पवन का स्पर्श होने पर सुख का वेदन होता है और उष्ण पवन का स्पर्श होने पर दुःख की अनुभूति होती है। इसी प्रकार शत्रु का सम्पर्क होने पर द्वेष का उदय होता है, इस कारण वह दुःख के सवेदन का निमित्त बनता है तथा मित्र का सान्निध्य मिलने पर राग का उदय होता है, इस कारण वह सुखसंवेदन में निमित्त बनता है। तथैव किसी प्रिय व्यक्ति, वस्तु या घटना का चिन्तन-स्मरण होता है, तब वह सुख की अनुभूति में निमित्त होती है और कोई अप्रिय व्यक्ति, वस्तु या घटना चिन्तन-स्मरण का विषय बनती है, तो वह दुःख की अनुभूति में निमित्त होती है। अतः ऐसे द्रव्य ही साता-असाता कर्मों के उदय में निमित्त होते हैं, अन्य नहीं।

सौन्दर्य और असौन्दर्य भी जीव के लिए इष्ट-अनिष्ट होने से सुख-दुःखानुभूति में निमित्त होते हैं। अतः कोई भवन यदि सुन्दर है, तो भले ही वह वास्तु-शास्त्र के अनुसार न बना हो, अर्थात् उसके रसोईघर आदि विभिन्न स्थान वास्तुशास्त्रानुकूल दिशा में न हों, तो भी वह सौन्दर्यप्रेमी दर्शक के सातावेदनीय के उदय में निमित्त बनेगा। इसके विपरीत भले ही कोई भवन वास्तुशास्त्र के अनुसार निर्मित हो, किन्तु सुन्दर (दृष्टिप्रिय) न हो, तो वह वास्तुशास्त्रप्रेमी को छोड़कर सामान्य दर्शक के सातावेदनीय के उदय का निमित्त नहीं बन सकता। आगरे का ताजमहल और मुंबई का ताजहोटल जैसे वास्तु इसके दृष्टान्त हैं। तात्पर्य यह कि किसी गृह के द्वार, रसोईघर, स्नानघर, कुआँ आदि का वास्तुशास्त्रानुकूल दिशा में होना और न होना मात्र, सामान्य दर्शक की दृष्टि को प्रिय-अप्रिय नहीं लग सकता, अतः उसका सामान्य दर्शक के साता-असातावेदनीय के उदय में निमित्त बनना संभव नहीं है। वास्तुशास्त्रप्रेमी का उपयोग भी वास्तुशास्त्रानुकूल गृह की शास्त्रानुकूलता के दर्शन, चिन्तन और अनुभवन में सदा नहीं लगा रह सकता, अतः वह उसके भी सातावेदनीय के नित्य उदय का निमित्त नहीं हो सकता। यह गोम्मटसार-कर्मकाण्ड की उपर्युक्त गाथा से सिद्ध होता है। अपरंच, भले ही किसी गृह का मुख्य द्वार पूर्व या उत्तर दिशा में न हो, किन्तु खिड़कियाँ पूर्व, उत्तर, पश्चिम, दक्षिण आदि दिशाओं में हों, तो उस घर में हवा और प्रकाश के संचार में कोई बाधा नहीं आ सकती, जिससे उस घर के लोग स्वस्थ रह सकते हैं। इस कारण भी वास्तुशास्त्रप्रतिकूल गृह असातावेदनीय के उदय का कारण नहीं बन सकता।

२. फिर भी यदि माना जाय कि वास्तुशास्त्र-प्रतिकूल निर्मित गृह अपने निवासियों के असातावेदनीय के उदय में निमित्त बनता है, तो इससे अनेक आगमविरुद्ध सिद्धान्तों का प्रसंग आता है। वास्तुशास्त्रियों ने वास्तुशास्त्र को विज्ञान माना है। भौतिकविज्ञान की यह विशेषता है कि उसके नियमों का कभी उल्लंघन नहीं होता। उससे सदा निरपवादरूप से समान परिणाम की उपलब्धि होती है। अतः यदि वास्तुशास्त्रप्रतिकूल गृह में वास असातावेदनीय कर्म के उदय में निमित्त होता है, तो इससे यह सिद्ध होता है कि जो मुनष्य उसमें जन्म से मृत्यु तक निवास करेगा, उसका असातावेदनीय कर्म जन्म से मृत्यु पर्यन्त उदय में आता रहेगा, सातावेदनीय के उदय का अवसर नहीं आयेगा, वह असाता के रूप में संक्रमित होकर उदय में आयेगा। इससे वह मनुष्य पूर्वकृत पुण्यों का फल भोगने से वंचित रह जायेगा और असातावेदनीय के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सदा उदय में रहने से उसे क्षुधा, तृषा की पीड़ाएँ सदा होती रहेंगी, भोजन करने पर भी क्षुधा की पीड़ा शान्त नहीं होगी, पानी पीने पर भी तृषा की वेदना से छुटकारा नहीं मिलेगा। दिन भर के श्रम से थक जाने पर भी उसे नींद नहीं आ पायेगी। किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि जो वास्तुशास्त्र-प्रतिकूल घर में रह रहे हैं, उनमें से किसी के साथ भी ऐसी प्रकृतिविरुद्ध घटनाएँ घटित नहीं होतीं। आगम में भी इन प्रकृति-विरुद्ध घटनाओं को मान्य नहीं किया गया है। अतः सिद्ध है कि वास्तुशास्त्र-विपरीत गृह असातावेदनीय के उदय का निमित्त नहीं है।

इसी प्रकार यदि यह माना जाय कि वास्तुशास्त्रानुकूल गृह स्वनिवासियों के सातावेदनीय कर्म के उदय में निमित्त होता है, तो इससे यह सिद्ध होता है कि जो मनुष्य उसमें जन्म से मृत्यु पर्यन्त रहेगा, उसका सातावेदनीय कर्म जन्म से मृत्यु तक उदय में आता रहेगा, असाता के उदय का अवसर कभी नहीं आयेगा, उसका उदय सातावेदनीय के रूप में संक्रमित होकर होता रहेगा। इसका परिणाम यह होगा कि उसने पूर्व में जो पाप कर्म किये थे, उनका दुःखरूप फल भोगने का अवसर उसे वर्तमान जीवन में कभी नहीं मिलेगा। इसके अतिरिक्त सातावेदनीय का नित्य उदय रहने से उसे क्षुधा-तृषा आदि की पीड़ाएँ वर्तमान जीवन में कभी नहीं होंगी, फलस्वरूप उसे अन्नजल ग्रहण करने की भी आवश्यकता नहीं होगी, और सातावेदनीय का उदय रहने से उसकी अकालमृत्यु भी नहीं होगी, जैसे सातावेदनीय का उदय रहने से रावण द्वारा प्रयुक्त बहुरूपिणी विद्या से राम और लक्ष्मण की अपमृत्यु नहीं हुई थी। किन्तु प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है कि जो मनुष्य वास्तुशास्त्रानुकूल निर्मित गृह में रहते हैं, उनके जीवन में ऐसी अतिशयपूर्ण अप्राकृतिक घटनाएँ नहीं घटतीं। आगम में भी संसारीजीवों में इन तीर्थंकर सदृश घटनाओं का घटित होना स्वीकार नहीं किया गया है। अतः सिद्ध है कि वास्तुशास्त्रानुकूल निर्मित गृह स्वनिवासियों के सातावेदनीयकर्म के उदय में निमित्त नहीं होता।

साता के उदय में अत्यन्त घातक निमित्त भी अकिंचित्कर

जिनेन्द्रदेव ने सातवेदनीय आदि पुण्यकर्म में ऐसी शक्ति बतलायी है, जिससे मन्त्रसिद्ध अत्यन्त घातक निमित्त भी अकिंचित्कर हो जाता है। बृहद्द्रव्यसंग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेवसूरि लिखते हैं-

"रावणेन रामस्वामी-लक्ष्मीधरविनाशार्थं बहुरूपिणी विद्या साधिता, कौरवैस्तु पाण्डवनिर्मूलनार्थं कात्यायनी विद्या साधिता, कंसेन च नारायणविनाशार्थं बह्वयोऽपि विद्याः समारधितास्ताभिः कृतं न किमपि रामस्वामि-पाण्डवनारायणानाम्। तैस्तु यद्यपि मिथ्यादेवता नानुकूलितास्तथापि निर्मलसम्यक्त्वोपार्जितेन पूर्वकृतपुण्येन सर्वं निर्विघ्नं जातिमिति।" (गाथा ४१/पृ.१५०)।

अनुवाद- "रावण ने राम और लक्ष्मण का विनाश करने के लिए बहुरूपिणी विद्या सिद्ध की थी, कौरवों ने पाण्डवों का संहार करने के लिए कात्यायनी विद्या साधी थी और कंस ने कृष्ण को मारने के लिए अनेक विद्याओं की आराधना की थी, किन्तु वे राम, लक्ष्मण, पाण्डवों और कृष्ण का कुछ भी नहीं बिगाड़ पायीं। और राम आदि ने यद्यपि मिथ्या देवताओं को प्रसन्न नहीं किया, तो भी निर्मल सम्यक्त्व द्वारा उपार्जित पूर्वकृत पुण्य के प्रभाव से सब विघ्न समाप्त हो गये।"

यहाँ यह बात स्मृति में रखने योग्य है कि जब सातावेदनीय के उदय में मन्त्रसिद्ध विद्याओं की भी अमोघ घातक शक्ति अकिंचित्कर हो जाती है, तब वास्तुशास्त्र-प्रतिकूल निर्मित गृह में यदि कोई घातक शक्ति है, तो सातावेदनीय के उदय में उसके कुछ बिगाड़ पाने की क्या बिसात?

सातावेदनीय के प्रबल उदय में निमित्त के स्वरूप में परिवर्तन

जिनेन्द्रदेव का उपदेश है कि सातावेदनीय का प्रबल उदय होने पर अत्यन्त घातक निमित्त भी रक्षक बन जाता है। सीताजी की अग्निपरीक्षा के लिए निर्मित अग्निकुण्ड जलसरोवर बन गया। श्रेणिकपुत्र वारिषेण के वध के लिए राजाज्ञा से वधिक के द्वारा चलाई गई तलवार पुष्पहार में परिवर्तित हो गयी। इसी प्रकार यदि वास्तुशास्त्रप्रतिकूल गृह में कोई घातक शक्ति मानी जाय, तो उसके निवासियों के सातावेदनीय के

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदय से उस घातक शक्ति का रक्षकशक्ति में बदल जाना अनिवार्य है। इस प्रकार जिनोपदिष्ट कर्म-सिद्धान्त के आगे वास्तुशास्त्र अकिंचित्कर सिद्ध होता है।

वास्तुशास्त्र-विरुद्ध गृह में वास से धनक्षय नहीं

धन का अलाभ और विनाश असातावेदनीय के उदय से होता है और वास्तुशास्त्रविरुद्ध गृह में वास करने से असातावेदनीय का उदय नहीं होता, अतः जिनोपदिष्ट कर्मसिद्धान्त के अनुसार वास्तुशास्त्रविरुद्ध गृह में वास धनक्षय का कारण नहीं है, यह सिद्ध होता है।

वास्तुशास्त्रविरुद्ध गृह में वास अकालमृत्यु का भी कारण नहीं

गोम्मटसार-कर्मकाण्ड में बतलाया गया है कि जीव की अकालमृत्यु आठ कारणों से होती है-विषभक्षण, वेदनातिशय, रक्तक्षय, भय, शस्त्रघात, संक्लेशपरिणाम, उच्छ्वासनिरोध और आहारनिरोध। (गाथा ५७)। वास्तुशास्त्र-विरुद्ध गृह में निवास को अपमृत्यु का कारण नहीं बतलाया गया है, न ही यह बतलाया गया है कि उक्त प्रकार के गृह में वास करने से शरीर में विष का संचार होता है या वेदनातिशय, रक्तक्षय आदि होते हैं, न ही ये प्रत्यक्ष प्रमाण से होते दिखाई देते हैं। अतः स्पष्ट है कि वास्तुशास्त्र-प्रतिकूल निर्मित गृह में वास जिनागम के अनुसार अकालमृत्यु का कारण नहीं है।

वास्तुशास्त्र-विरुद्ध गृह में वास पापकर्म नहीं

वास्तुशास्त्र-विरुद्ध गृह में निवास कोई पापकर्म नहीं है, क्योंकि पाप केवल पाँच ही बतलाये गये हैं। उनमें से उक्त प्रकार के गृह में वास न हिंसारूप है, न असत्यरूप, न स्तेयरूप, न अब्रह्मरूप और न परिग्रहरूप। कुदेवायतन न होने से अशुभपरिणामों का जनक भी नहीं है। अतः उसमें वास करने से पाप कर्म का बन्ध नहीं हो सकता, अत एव अपमृत्यु, कुलक्षय, धनक्षय आदि पापफल भी प्राप्त नहीं हो सकते।

ऊर्जा के स्रोत प्रत्येक गृह में हैं

वास्तुशास्त्री एक यह तर्क देते हैं कि वास्तुशास्त्र-विरुद्ध निर्मित गृह में उन प्राकृतिक ऊर्जाओं का आना अवरुद्ध हो जाता है, जो पर्यावरण में विद्यमान रहती हैं। यह तर्क भी समीचीन नहीं हैं। ऊर्जा का अर्थ है शक्ति। जिनागम के अनुसार शक्ति के स्रोत दो हैं- चैतन्य और पुद्गल। चैतन्यशक्ति वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से प्रकट होती है और शरीर को पुष्ट और स्वस्थ करनेवाली पौद्गलिक ऊर्जा आहार, जल, प्राणवायु (आक्सीजन) और सूर्यप्रकाश से प्राप्त होती है। शरीर के स्वस्थ और सशक्त रहने के लिये जरूरी विटामिन, आयरन, मिनरल्स आदि सभी तत्त्व इन्हीं चार तत्त्वों में समाविष्ट होते हैं। शरीर को तेज और कान्ति प्रदान करनेवाला तैजस शरीर तो अनादि से जीव के साथ सम्बद्ध है। इनके अतिरिक्त शरीर के लिए आवश्यक ऊर्जा का और कोई स्रोत नहीं है। फिर भी यदि कोई अन्य अनाम स्रोत भी आवश्यक माना जाय, तो वह पौद्गलिक ही हो सकता है। और सम्पूर्ण पुद्गल पाँच प्रकार की वर्गणाओं में विभक्त हैं, जिनके नाम हैं- आहारवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा, तैजसवर्गणा और कार्मणवर्गणा। ये पाँचों वर्गणाएँ सम्पूर्ण लोकाकाश में ठसाठस भरी हुई हैं, उस गृह के आकाश (खाली स्थानों) में भी भरी हुई हैं, जो वास्तुशास्त्र के अनुसार निर्मित है, और उस गृह के आकाश में भी जो तदनुसार निर्मित नहीं है। अतः वास्तुशास्त्रविपरीत गृह में रहनेवाले मनुष्यों को भी ऊर्जा के सभी स्रोत उपलब्ध होते हैं। हाँ दोनों प्रकार के गृहों में आक्सीजन और सूर्यप्रकाश के संचार के लिए द्वार और खिड़कियाँ आवश्यक हैं

केवली के अवर्णवाद से भी केवल दर्शनमोह का बन्ध

गृहचैत्यालय का निर्माण पूर्वोक्त विद्वद्वय द्वारा बतलाये वास्तुशास्त्र के अनुसार ही किया जाना चाहिए, ताकि जिनबिम्ब की अविनय और जिनालय अशुद्ध न हो। किन्तु यदि अज्ञानतावश वास्तुशास्त्र के विरुद्ध निर्माण हो जाता है, तो उससे निर्माता की अपमृत्यु, कुलक्षय, धनक्षय आदि होने का उल्लेख जिनागम में नहीं है। गृहचैत्यालय के निर्माता की जिनदेव में श्रद्धा होती है, तभी वह अपने घर में चैत्यालय बनवाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

है, भले ही अज्ञानतावश गलत तरीके से बनवा लेता है। किन्तु जो केवली, श्रुत, संघ और धर्म का अवर्णवाद (निन्दा) करते हैं, उनकी तो केवली आदि में श्रद्धा ही नहीं होती, अपितु घृणा होती है। उनके लिए भी तत्त्वार्थसूत्र में केवल दर्शनमोह का आस्रवबन्ध प्रमुखता से बतलाया गया है (तत्त्वार्थसूत्र/६/१३), अकालमृत्यु, कुलक्षय, धनक्षय आदि रूप फल नहीं बतलाया। तब वास्तुशास्त्र-प्रतिकूल गृहचैत्यालय बनवानेवाले को कैसे बतलाया जा सकता है? वह जो श्रद्धापूर्वक जिनदेव की पूजा करता है, उससे उसके पाप भी तो कटते हैं और पुण्यबन्ध होता है।

वास्तुशास्त्रानुकूल गृह में कर्मोदयजनित दुःख के निवारण की शक्ति नहीं

जिनागम में जिनभक्ति, जिन-दर्शन-पूजन, दयाभाव आदि में तो कर्मोदयजनित दुःख के निवारण की शक्ति बतलायी गयी है, किन्तु वास्तुशास्त्रानुकूल-गृहवास में नहीं बतलायी गयी। इस प्रकार के गृह में रहने पर भी कर्मजनित दुःखों को भोगना ही पड़ेगा। **हिन्दू-वास्तुशास्त्र** का भी यही कथन है। गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित वास्तुशास्त्रीय ग्रन्थ **भवनभास्कर** में इसके लेखक श्री राजेन्द्रकुमार धवन लिखते हैं-"**वास्तुविद्या के अनुसार मकान बनाने से कुवास्तुजनित कष्ट तो दूर हो जाते हैं, पर प्रारब्धजनित (कर्मोदयजनित) कष्ट तो भोगने ही पड़ते हैं। जैसे औषध लेने से कुपथ्यजनित रोग तो मिट जाता है, पर प्रारब्धजन्य रोग नहीं मिटता। वह तो प्रारब्ध का भोग पूरा होने पर ही मिटता है।**" (प्राक्कथन/पृ.७)।

जिनागम के अनुसार तो सभी कष्ट स्व-कर्मोदयजनित ही होते हैं, कुवास्तु आदि परद्रव्यजनित कोई भी कष्ट नहीं होता।

वास्तुशास्त्रविषयक ग्रन्थों में भी मतभेद

उक्त ग्रन्थ में श्री राजकुमार धवन यह भी लिखते हैं कि "इस विद्या (वास्तुविद्या) के अधिकांश ग्रन्थ लुप्त हो चुके हैं और जो मिलते हैं, उनमें भी परस्पर मतभेद है।" (प्राक्कथन/पृ.७)। यह मतभेद सिद्ध करता है कि वास्तुशास्त्र विज्ञान नहीं है, क्योंकि वैज्ञानिक नियमों में मतभेद की गुंजाइश नहीं होती।

वास्तुदेव की कल्पना

जहाँ सुख दुःख को स्वकीय-कर्मजनित नहीं माना जाता, वहाँ ईश्वर या देवी-देवता द्वारा जनित मानना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि जड़ वस्तु में ऐसी विवेक-बुद्धि, ऐसी न्यायशक्ति और दण्डपुरस्कारशक्ति नहीं हो सकती, जो दण्ड के पात्र को दण्डित कर सके और पुरस्कार के पात्र को पुरस्कृत, किसी को अपमृत्यु का दण्ड निर्धारित करे, किसी को कुलक्षय का, किसी को धनक्षय का और किसी को सन्तति और धनधान्य आदि का पुरस्कार नियत कर सके। इसलिए **हिन्दू-वास्तुशास्त्र** में एक **वास्तुपुरुष** की कल्पना की गयी है (देखिये, भवनभास्कर/अध्याय १/पृ.९) और **प्रतिष्ठापाठ** के कर्त्ता **पं० आशाधर** जी तथा **प्रतिष्ठातिलक** के रचयिता **पं० नेमिचन्द्र** आदि जैन-वास्तुशास्त्रियों ने **वास्तुदेव** की कल्पना की है। यही वास्तुपुरुष या वास्तुदेव वास्तुशास्त्र के प्रतिकूल और अनुकूल निर्मित गृहों में रहनेवालों को दण्डित और पुरस्कृत करता है। जीवों को सुख-दुःख देनेवाले ऐसे वास्तुदेव या ईश्वर की सत्ता जिनागम स्वीकार नहीं करता। अतः इस दृष्टि से वास्तुशास्त्र जिनागम के अनुकूल नहीं है और किसी कल्पित देवता के द्वारा नियंत्रित होने से विज्ञान भी नहीं है।

दिगम्बरजैनमत में वास्तुदेव की कल्पना जिन ग्रन्थों में की गयी है, उनके उद्धरण पं० मिलापचन्द्र जी कटारिया ने अपने लेख **वास्तुदेव** (जैन निबन्ध रत्नावली, भाग २/पृ.५२३-५२७) में दिये हैं। सन्दर्भ के लिए उसे भी 'जिनभाषित' के प्रस्तुत अंक में उद्धृत किया जा रहा है। **जैन वास्तुशास्त्रियों से अनुरोध है कि वे वास्तुशास्त्र के अनुकूल और प्रतिकूल निर्मित गृहों में निवास के जो सुपरिणाम और दुष्परिणाम बतलाते हैं, उनकी जैनकर्मसिद्धान्त से आगमप्रमाणों के द्वारा (भट्टारकीय और अजैन ग्रन्थों के उद्धरणों द्वारा नहीं) संगति बैठाने की कृपा करें।**

रतनचन्द्र जैन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वास्तुदेव

स्व० पं० मिलापचन्द्र जी कटारिया

श्री पं० आशाधर जी ने अपने बनाये **प्रतिष्ठापाठ** पत्र ४३ में और अभिषेकपाठ के श्लोक ४४ में वास्तुदेव का उल्लेख निम्न शब्दों में किया है–

श्री वास्तुदेव वास्तूनामधिष्ठातृतयानिशम्।
कुर्वन्ननुग्रहं कस्य मान्यो नासीति मान्यसे॥ ४४॥
ओं ह्रीं वास्तुदेवाय इदमर्घं पाद्यं ----।

अर्थ– हे श्री वास्तुदेव (गृहदेव) तुम गृहों के अधिष्ठातापने से निरन्तर उपकार करते हुये किसके मान्य नहीं हो? सभी के मान्य हो। इसी से मैं भी आपको मानता हूँ।

ऐसा कह कर वास्तुदेव के लिए अर्घं देवे।

श्रुतसागर ने वास्तुदेव की व्याख्या ऐसी की है– **'वास्तुरेव देवो वास्तुदेवः।'** घर ही को देव मानना वास्तुदेव है। जैसे लौकिक में अन्नदेव, जलदेव, अग्निदेव आदि माने जाते हैं। इससे मालूम होता है कि श्रुतसागर की दृष्टि में वह कोई देवगति का देव नहीं है। करणानुयोगी-लोकानुयोगी ग्रन्थों में भी वास्तु नाम के किसी देव का उल्लेख पढ़ने में नहीं आया है। आशाधर ने इस देव का नाम क्या है यह भी नहीं लिखा है। यहाँ तक कि इसका स्वरूप भी नहीं लिखा है।

प्रतिष्ठातिलक के कर्त्ता नेमिचन्द्र के सामने भी आशाधर का उक्त श्लोक था। जिसके भाव को लेकर उन्होंने जो श्लोक रचा है वह प्रतिष्ठातिलक के पृष्ठ ३४७ पर इस प्रकार है–

सर्वेषु वास्तुषु सदा निवसन्तमेनं,
श्री वास्तुदेवमखिलस्य कृतोपकारं।
प्रागेव वास्तुविधिकल्पितयज्ञभागमी,
शानकोणदिशि पूजनया धिनोमि॥

अर्थ– सब घरों में सदा निवास करनेवाले और सबका जिसने उपकार किया है तथा पहिले से ही जिसका ईशान कोण की दिशा में वास्तुविधि से यज्ञभाग कल्पित है, ऐसे इस वास्तुदेव को पूजता हूँ।

अभिषेकपाठसंग्रह के अन्य पाठों में वास्तुदेव का उल्लेख नहीं है। हाँ अगर जिनगृहदेव को वास्तुदेव मान लिया जाये, तो कदाचित् जैनधर्म से उसकी संगति बैठाई जा सकती है, क्योंकि जैनागम में जिनमन्दिर की नवदेवों में गणना की है। पता नहीं आशाधर और नेमिचन्द्र का वास्तुदेव के विषय में यही अभिप्राय रहा है या और कोई? फिर भी यह तो स्पष्ट ही है कि जैन कहे जानेवाले अन्य कितने ही क्रियाकांडी ग्रन्थों में वास्तुदेव को जिनगृहदेव के अर्थ में नहीं लिया है।

जैसे कि नेमिचन्द्र-प्रतिष्ठापाठ के परिशिष्ट में वास्तु-बलि-विधान नामक एक प्रकरण छपा है, वह न मालूम नेमिचन्द्रकृत है या अन्यकृत? उसमें वास्तुदेवों के नाम इस प्रकार लिखे हैं–

"आर्य, विवस्वत्, मित्र, भूधर, सविंद्र, साविंद्र, इन्द्रराज, रुद्र, रुद्रराज, आप, आपवत्स, पर्जन्य, जयंत, भास्कर, सत्यक, भृशुदेव, अंतरिक्ष, पूषा वितथ, राक्षस, गंधर्व, भृंगराज, मृषदेव, दौवारिक, सुग्रीव, पुष्पदंत, असुर, शोष, रोग, नाग, मुख्य, भल्लाट, मृग, आदिति, उदिति, विचारि, पूतना, पापराक्षसी और चरकी ये ४० नाम हैं।"

वास्तुदेवों के इसी तरह के नाम जैनेतर ग्रन्थों में लिखे मिलते हैं (देखो सर्वदेवप्रतिष्ठाप्रकाश व वास्तुविद्या के अजैन ग्रन्थ) **वहीं से हमारे यहाँ आये हैं**। वे भी आशाधर के बाद के क्रिया-कांडी ग्रन्थों में, पुन्याहवाचन पाठों में। यह बलिविधान इसी रूप में आशाधर-पूजा-पाठ नाम की पुस्तक में भी छपा है। वहाँ दस दिग्पालों को भी वास्तुदेवों में गिना है। जैनेतर ग्रन्थों में ऐसा नहीं है।

एकसंधि-जिनसंहिता में भी वास्तुदेव-बलिविधान नामक २४ वाँ परिच्छेद है, जिसमें भी उक्त ४० नामों के साथ दश दिग्पालों के नाम हैं। ऐसा मालूम होता है कि वास्तुदेवों को बलि देने के पहिले दिग्पालों का बलिविधान लिखा हो और लगते ही वास्तुदेवों को बलि देने का कथन किया है। इस तरह से भी वास्तुदेवों में दिग्पालदेव शामिल हो सकते हैं। अन्य मत में वास्तुदेवों को बलि देने की सामग्री में मधु मांस आदि हैं। जैन मत में मांस को सामग्री में नहीं लिया है, तथापि मधु को तो लिया ही है।

एकसंधि-संहिता के उक्त परिच्छेद के १७ वें श्लोक में मजेदार बात यह लिखी है– बलि देते वक्त बलिद्रव्यों को लिये हुए आभूषणों से भूषित कोई कन्या या वेश्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अथवा कोई मदमाती स्त्री होनी चाहिए। यथा-

बलिप्रदानकाले तु योग्या स्याद् बलिधारणे।
भूषिता कन्याका वा स्याद् वेश्या वा मत्तकामिनी॥ १७॥

(परिच्छेद २४)

ऐसा कथन नेमिचन्द्र प्रतिष्ठापाठ में छपे इस प्रकरण के पृष्ठ ४ के श्लोक ११ से भी प्रतिभासित होता है।

जिन शास्त्रों में साफ तौर पर अन्यमत के माने हुए देवों की आराधना का कथन किया है और उनकी आराधनाविधि में ऐसी वाहियात बातें वेश्या आदि की लिखी हैं, उन शास्त्रों को हम केवल यह देखकर जिनवाणी मानते रहें कि वे संस्कृत, प्राकृत में लिखे हैं और किन्हीं जैन नामधारी बड़े विद्वान् के रचे हुये हैं, जब तक हमारे में यह आगममूढ़ता बनी रहेगी, तब तक हम जैनधर्म का उज्ज्वल रूप नहीं पा सकेंगे। इन मिथ्या देवों का ऐसा कुछ जाल छाया हुआ है कि पण्डित लोग भी इनके दुर्मोह से ग्रसित हैं। शुद्धाम्नायी पं० शिवजीरामजी राँची वालों का लिखा एक प्रतिष्ठाग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जिसमें इन सभी वास्तुदेवों की उपासना का वर्णन किया है। बलिहारी है उनके शुद्धाम्नाय की।

वास्तुदेवों के जो नाम जैन ग्रन्थों में लिखे मिलते हैं, उनकी अन्यमत के नामों से कहीं २ भिन्नता भी है। जैसे अन्य मत के नाम अर्यमा, सवितृ सावित्र, शेष, दिति विदारि। इनके स्थान में जैनमत के नाम क्रम से ये हैं- आर्य, सविंद्र, सावींद्र, शोष, उदिति और विचारि। इन नामों में थोड़ा सा ही अक्षरभेद है। यह भेद लिखने-पढ़ने की गलती से भी हो सकता है। कुछ नामभेद शायद इस कारण से भी किये हों कि उनमें स्पष्टतः अजैनत्व झलकता है। जैसे अर्यमा का आर्य, शेष का शोष, दिति का उदिति बनाया गया है। क्योंकि अन्यमत में अर्यमा का अर्थ पितरों का राजा, शेष का अर्थ शेष-नाग, दिति का अर्थ दैत्यों की माता होता है। सविंद्र और सावींद्र शब्दों का कुछ अर्थ समझ नहीं पड़ता है, जरूर ये शुद्ध शब्द सवितृ और सावित्र का बिगड़ा रूप हैं। इसी तरह शुद्ध शब्द विदारि का गलती से विचारि लिखा-पढ़ा गया है।

वास्तुदेवों के नामों में रुद्र, जयंत (यह नाम इन्द्र के पुत्र का है) और अदिति (यह देवों की माता का नाम है), ये नाम दोनों ही मतों के नामों में हैं। **परन्तु मूल में ये नाम साफ तौर पर ब्राह्मणमत के मालूम देते हैं।** जैन मान्यता के अनुसार इन्द्र का पुत्र और देवों की माता का कथन बनता नहीं है। जैनमत में देवों के माता-पिता होते ही नहीं हैं, न रुद्र ही कोई उपास्य देव माना गया है।

भगवान् महावीर ने ब्राह्मणमत की फैली हुई जिन मिथ्या रूढ़ियों का जबरदस्त भंडाफोड़ किया था, खेद है उनके शासन में ही आगे चलकर वे रूढ़ियाँ प्रवेश कर गई हैं।

'जैन निबन्ध रत्नावली' (भाग २)
से साभार

संतवाणी से मनुष्य का उद्धार

श्रावकों के सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चरित्र को जिस पिटारे में रखा जाता है, वह रत्नकरण्ड-श्रावकाचार कहलाता है। आचार्यों की वाणी का पाठ करने से मनुष्य का उद्धार हो जाता है। ध्वजा, मंदिर, संत व साधु सभी मंगलसूचक होते हैं। भारत में बायें, हाथ की ओर चलने के पीछे भी प्रयोजन है। बायें हाथ की तरफ चलने से सामने से आनेवाला व्यक्ति दायें हाथ की ओर से आएगा, तो मंगलसूचक है तथा सामनेवाले के लिए भी आप मंगलसूचक हो जाएँगे। इसलिए मंदिर की परिक्रमा करते समय भगवान् को भी दाहिनी ओर रखा जाता है।

मनुष्य सांसारिक वृत्तियों में उलझा रहता है। इसके कारण ही उसका कल्याण नहीं हो पाता है। पापक्रिया से निवृत्त होने पर ही सम्यग्दर्शन होता है। समाज में सब को अपनी ही पड़ी है, स्वार्थ के कारण ही मनुष्य मेलमिलाप करता है। वह तो पशुओं से भी बदतर हो गया है। सच्चे देव, सच्चे शास्त्र एवं सच्चे गुरु की शरण में जाने से ही मनुष्य का उद्धार हो सकता है।

संकलन : सुशीला पाटनी
आर. के. हाऊस, मदनगंज-किशनगढ़

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गृहचैत्यालय : स्वरूप एवं सावधानियाँ

पं० सनतकुमार विनोदकुमार जैन,
प्रतिष्ठाचार्य

पिछले दिनों जब मुझे महाराष्ट्र एवं कर्नाटक में विभिन्न स्थानों पर जाने का अवसर प्राप्त हुआ, तो मैंने देखा कि वहाँ गृहचैत्यालय बहुत अधिक मात्रा में उपलब्ध हैं, जबकि उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान आदि में गृहचैत्यालय की परम्परा नगण्य है। परन्तु मैंने यह भी देखा कि महाराष्ट्र एवं कर्नाटक में गृहचैत्यालयों का स्वरूप वास्तु-शास्त्रानुसार नहीं है तथा असावधानियाँ बहुत हैं, जो दुर्भाग्य एवं आपत्तियों को प्रदान करनेवाली हैं। अतः यह लेख लिखा जा रहा है ताकि विशेषरूप से कर्नाटक एवं महाराष्ट्र में गृहचैत्यालयों के स्वरूप तथा असावधानियों में तदनुसार सुधार किया जा सके।

१. परिभाषा–

'दृषदिष्टकाकाष्ठादिरचिते श्रीमद्भगवत्सर्वज्ञ-वीतरागप्रतिमाधिष्ठितं चैत्यगृहं।' बोधपाहुड।

अर्थात् जो ईंट पत्थर व काष्ठादि से बनाये जाते हैं तथा जिनमें भगवत्-सर्वज्ञ वीतराग की प्रतिमा रहती है वे चैत्यालय हैं। चैत्यालय का अस्तित्व अनादिकाल से है। चैत्यालय कृत्रिम और अकृत्रिम के भेद से दो प्रकार के हैं।

चैत्यालयों के अन्य दो भेद भी हैं– १. सार्वजनिक चैत्यालय २. गृह चैत्यालय। इन चैत्यालयों की परम्परा भी अनादि काल से है। तीनों लोकों के अकृत्रिम चैत्यालयों की जो नियत संख्या है वह सार्वजनिक चैत्यालयों की संख्या है। भवनत्रिकों के निवास स्थानों में गृहचैत्यालयों की संख्या असंख्यात है। जैसा कहा भी है–

'ज्योतिर्व्यन्तरभावनामरगृहे.....।' (मंगलाष्टक)

अर्थात् ज्योतिष्क, व्यन्तर, भवनवासी आदि देवों के गृहों में जिनगृह अर्थात् चैत्यालय हैं। ये अकृत्रिम हैं। कृत्रिम गृहजिनालयों की परम्परा का जैनागम में अनेक स्थानों पर उल्लेख है। जैसे–

१. **जिनेन्द्रभक्तश्रेष्ठिनः सप्ततलप्रासादोपरि बहु-रक्षकोपयुक्तपार्श्वनाथप्रतिमा छत्रत्रयोपरि .....।** (रत्नकरण्डकश्रावकाचर १/२० टीका : प्रभाचन्द्राचार्य)।

अर्थात् जिनेन्द्र भक्त सेठ के सतखण्डा महल के ऊपर अनेक रक्षकों से सहित पार्श्वनाथ भगवान् के ऊपर तीन छत्र लगे थे.....। और भी–

२. **यस्यांगुष्ठप्रमाणापि जैनेन्द्रीप्रतियातना।**
गृहे तस्य न मारी स्यात्तार्क्ष्यभीता यथोरगी॥ ७६॥

पद्मपुराण सर्ग ९२।

अर्थात् जिसके घर में अंगुष्ठ प्रमाण भी जिनप्रतिमा होगी, उसके घर में गारुड़ी से डरी हुई सर्पिणी के समान मारी का प्रवेश नहीं होगा।

श्री मुनिसुव्रत भगवान् के समय में शत्रुघ्न के शासन में मथुरा नगर में रोग फैला था, तब सप्त ऋषियों के निमित्त से वह संकट दूर हुआ था। उन ऋषियों ने गृह चैत्यालय का उपर्युक्त उपदेश दिया था। हो सकता है तब से ही कृत्रिम गृह चैत्यालय बनाने की परम्परा हो।

परन्तु गृहचैत्यालय गृह में कहाँ बनाना, कैसी प्रतिमा स्थापित करना एवं उसकी कैसी मर्यादा करना आदि का ज्ञान न होने से हम अज्ञानता वश अनेक संकटों को आमंत्रण देते रहते हैं।

२. गृहचैत्यालय की दिशा

गृह पूर्व या उत्तरमुखी ही बनाये जाने चाहिये, इनमें गृह चैत्यालय भी पूर्व या उत्तर मुखी बनाना और उसमें प्रतिमा भी पूर्व या उत्तरमुखी स्थापना करना श्रेष्ठ है।

गृहे प्रविशता वामभागे शल्यवर्जिते।
देवतावसरं कुर्यात्सार्धहस्तोर्ध्वं भूमिके॥ ९८॥
नीचैर्भूमिस्थितं कुर्यादेवतावसरं यदि।
नीचैर्नीचैस्ततोऽवश्यं सन्तत्यापि समं भवेत्॥ ९९॥

उमास्वामी-श्रावकाचार

अर्थात् गृह में प्रवेश करते हुए बायें भाग की ओर शुद्ध भूमि पर डेढ़ हाथ ऊँची भूमि पर देवस्थान बनाना चाहिये। यदि देवस्थान नीची भूमि पर बनाया जायेगा, तो वह गृहस्थ अवश्य ही संतानहानि के साथ-साथ हीन-हीन अवस्था को प्राप्त हो जायेगा।

गृह में निवास स्थान की तरफ जिनेन्द्रदेव की पीठ एवं बायाँ हाथ नहीं होना चाहिये। जिनेन्द्रदेव की पीठ एवं बायें भाग की ओर गृहस्थ का निवास गृहस्थ को शुभ फल नहीं देता है। उन्नति रुक जाती है। दरिद्रता का साम्राज्य हो जाता है। जिनके घर छोटे हैं और जो गृह और देवालय के मध्य खाली स्थान छोड़ने में असमर्थ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं, उन्हें गृहचैत्यालय नहीं बनाना चाहिये। जो विस्तृत क्षेत्र में गृहनिर्माण कराना चाहते हैं, वे शिल्प शास्त्रानुसार पूर्व या उत्तर दिशा में विपुल स्थान छोड़कर दक्षिण-पश्चिम में गृहनिर्माण करके ईशान कोण में गृहचैत्यालय बनावें।

'**ऐशान्यां देवसद्गृहम्.....**।' उमास्वामी श्रावकाचार में गृहचैत्यालय की दिशा भी ईशान कही है। गृहचैत्यालय शिल्पशास्त्रानुसार ही बनाना चाहिये। इसके बिना उसके विपरीत प्रभाव पड़ते हैं।

शास्त्रमार्ग परित्यज्य आत्मबुद्धिर्यदा भवेत्।
तत्फलं सर्वतो नास्ति प्रासादमठमंदिरम्॥ १५३॥

शिल्परत्नाकर / पंचमरत्न

अर्थात् जो शास्त्र की मर्यादा और विधि को छोड़कर अपनी बुद्धि का उपयोग कर देवालय, मठ, आश्रम या घर आदि बनवाता है, उसके उस निर्माण का प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है।

प्रासादो मण्डपश्चैव विना शास्त्रेण यः कृतः।
विपरीतं विभागेषु योऽन्यथा विनिवेशयेत्॥
विपरीतं फलं तस्य अरिष्टं तु प्रजायते।
आयुर्नाशो मनस्तापः पुत्रनाशः कुलक्षयः॥

वत्थुविज्जा / पृ. १७०

अर्थात् शास्त्रप्रमाण के बिना, यदि देवालय, मण्डप (वेदी), गृह और तलभाग आदि का विभाग विपरीत स्वभाव से कर लिया जायेगा, तो उस देवालय आदि से विपरीत फल ही मिलेगा। अर्थात् अरिष्ट उत्पन्न होगा, आयु का नाश होगा, मनस्ताप बना रहेगा, पुत्रनाश होगा और कुलक्षय होगा।

वर्तमान समय में नगर के बाह्य भागों में जो कॉलोनी बनती हैं, वे प्रायः दिग्मूढ़ होती हैं। जब गृह ही दिग्मूढ़ बना हो, तब गृह चैत्यालय पूर्व या उत्तरमुखी कैसे बनाया जा सकता है? **ऐसे गृह सुख-शांति नहीं दे सकते हैं।** यदि दिग्मूढ़ गृहों में गृह चैत्यालय बनाना पड़े, तो **अष्टकोणी कक्ष बनाकर उसमें पूर्व या उत्तरमुखी भगवान् विराजमान करके गृह चैत्यालय बनाना चाहिये।** दिग्मूढ़ दिशा में मुख करके कभी भी भगवान् विराजमान नहीं करना चाहिये।

३. गृहचैत्यालय का विस्तार

गिहदेवालयं कीरइ दारुमयविमाणपुप्फयं नाम।
उववीढ पीठ फरिसं जं हुत्त चउरसं तस्सुवरिं॥ ६३॥

वास्तुसार

अर्थात् गृहचैत्यालय में पुष्पकविमान-आकार सदृश लकड़ी का गृहचैत्यालय बनाना चाहिये। उपपीठ, पीठ और उसके ऊपर समचौरस फरस आदि बनाना चाहिये।

चउ थभं चउ द्वारं चउ तोरण चउ दिसेहिं छज्जउडं।
पंचकण वीर सिहरं एग दुति वारेग सिहरं वा॥ ६४॥

वास्तुसार

अर्थात् चारों कोणों पर चार स्तम्भ, चारों दिशाओं में चार द्वार, चार तोरण, चारों ओर छज्जा और कनेर के पुष्प जैसा पाँच शिखर (एक मध्य में गुम्बज, उसके चारों कोणों पर एक एक गुमटी) करना चाहिये। एक द्वार, दो द्वार अथवा तीन द्वारवाला और एक शिखरवाला भी बना सकते हैं।

समचउरंसं गब्भे तत्तो असवाउ उदएसु॥ ६५॥

वास्तुसार

गर्भगृह समचौरस और गर्भगृह के विस्तार से सवाई ऊँचाईवाला होना चाहिये।

आलयमज्झे पडिमा छज्जय मज्झम्मि जलवट्टं॥ ६७॥

वास्तुसार

गृह मंदिर के मध्य में प्रतिमा रखें और छज्जा बाहर निकलता हुआ जल निकलने का द्वार बनावें।

न कदापि ध्वजादण्डो स्थाप्यो वै गृहमंदिरे।
कलशामलशारौ च शुभदौ परिकीर्तितौ॥ २०८॥

शिल्परत्नाकर - १२

अर्थात् गृह चैत्यालय पर ध्वज चढ़ाना शुभ नहीं है, अत्यन्त हानिकारक है। मात्र कलश चढ़ाना शुभ है। शिखरसहित देवालय घर में स्थापित करना और पूजना योग्य नहीं, यदि तीर्थयात्रा में साथ ले जाया जाय, तो दोष नहीं है। (शिल्परत्नाकर-श्लोक-२०९)

४. गृहचैत्यालय में प्रतिमा का स्वरूप

भित्तिसंलग्नबिम्बश्च पुरुषः सर्वथाऽशुभाः।
चित्रमयाश्च नागाद्या भित्तौ चैव शुभावहाः॥ २०४॥

शिल्परत्नाकर

अर्थात् गृहचैत्यालय में दीवार से स्पर्शित मूर्ति स्थापित करना सर्वथा अशुभ है। यदि चित्र दीवार पर बने हों तो शुभ है।

प्रतिमाकाष्ठलेपाश्म दन्तचित्रायसा गृहे।
मानाधिका परिवारसहिता नैव पूज्यते॥ १९॥

शिल्परत्नाकर

अर्थात् काष्ठ, पाषाण, लेप, हाथीदाँत, लोहा और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रंग से चित्रित की गयी चित्राम की प्रतिमा और ग्यारह अंगुल से अधिक बड़ी तथा अपने परिवार युक्त प्रतिमा गृह चैत्यालय में पूजने योग्य नहीं है। यहाँ पाषाणमूर्ति का निषेध इसलिये किया है, ताकि असावधानी वश खण्डित न हो जावे।

गृह चैत्यालय में किन तीर्थंकरों की मूर्ति विराजमान न करें, इस सम्बन्ध में दो मत हैं-

१. **मल्लिनेमीवीरो गिहभवणे सावए ण पूइज्जइ।**
इगवी संतित्थयरा संतगरा पूइया वंदे॥

प्रतिष्ठाकल्प (उपा. सकलचन्द्र)

अर्थात् गृह चैत्यालय में मल्लिनाथ, नेमिनाथ एवं महावीर स्वामी की प्रतिमा अति वैराग्यकारक होने के कारण नहीं रखनी चाहिये। शेष २१ तीर्थंकरों की प्रतिमा ही रखें। इसी प्रकार **शिल्प स्मृति वास्तु विद्यायाम्**-श्लोक-६३ में भी कहा है।

२. बालब्रह्मचारी वासुपूज्य, मल्लिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर, ये पाँच तीर्थंकर वैराग्यकारक हैं। इनकी प्रतिमा श्रावक गृहचैत्यालय में स्थापित न करें। (वास्तुसार पृ. ९७)

गृहचैत्यालय में एक से ग्यारह अंगुल की **विषम अंगुल प्रमाण प्रतिमा ही शुभकारक होती है।** ग्यारह अंगुल से बड़ी प्रतिमा गृह चैत्यालय में स्थापित न करें। वास्तुसार प्रकरण (१,२,३,४) में भी इस प्रकार कहा है-

'गृह चैत्यालय में एक अंगुल ऊँची प्रतिमा श्रेष्ठ, दो अंगुल ऊँची धननाशक, तीन अंगुल वृद्धिकारक, चार अंगुल पीड़ाकारक, पाँच अंगुल बुद्धिप्रदा, छह अंगुल उद्वेगकारक, सात अंगुल ऊँची वृद्धिकारक, आठ अंगुल बुद्धिहानिकारक, नव अंगुल पुत्रप्रदा, दस अंगुल धननाशक और ग्यारह अंगुल ऊँची प्रतिमा गृह चैत्यालय में सर्व अर्थ सिद्धिकारक है।' (उमास्वामी श्रावकाचार-१०१ से १०३ एवं शिल्परत्नाकर १२/१४९-१५१)।

अचल प्रतिमा गृह चैत्यालय में स्थापित नहीं करना चाहिये।

नैक हस्तादितोऽन्यूने प्रासादे स्थिरता नयेत्।
स्थिरं न स्थापयेद् गेहे गृहीणां दुःख कृद्भयत्॥ १३०॥

(षष्ठमोऽधिकारः, शिल्पस्मृति-वास्तुविद्यायाम्)

अर्थात् एक हाथ से छोटी वेदी एवं गृह चैत्यालय में स्थिर (अचल) प्रतिमा स्थापित करना दुःखकारक है। दीवारस्थित आले में, अलमारी में भी प्रतिमा स्थापित नहीं करना चाहिये। गृह चैत्यालय में भी माप के अनुसार वेदी बनाकर प्रतिमा स्थापित करना चाहिये। **अन्यायोपार्जित द्रव्य से निर्मित प्रतिमा भी अशुभ होती है।** कहा भी है-

अन्यायद्रव्यनिष्पन्ना वास्तुदलोद्भवा मता।
हीनाधिकांगिनी प्रतिमा स्वपरोन्नतिनाशिनी॥ १४२॥

(शिल्पस्मृतिवास्तुविद्यायाम् उत्तरार्ध)

अर्थात् अन्याय से उपार्जित द्रव्य से या अन्य किसी कार्य हेतु लाये हुए द्रव्य से प्रतिमा का निर्माण कराया हो अथवा प्रतिमा हीनाधिक अंगोपांगवाली हो, तो स्व-पर की उन्नति का विनाश होता है। अतः देवालय और प्रतिमा शास्त्रानुसार माप से बनवाकर स्थापित करना चाहिये, तभी सद्फल की प्राप्ति होती है, अन्यथा परेशान होना पड़ता है।

देवतानां गृहे चिन्त्य मायाद्यंगचतुष्टयम्।
नवांगनाडीवेधादि स्थापकामरयोर्मिथः॥

वत्थुविज्जा, पृ.१७०

अर्थात् देवालय में आय, व्यय, अंश और नक्षत्र इन चार अंगों का तथा देव, देवालय, और देव को स्थापन करनेवाले यजमान के परस्पर में नाड़ी वेध, योनि, गण, राशि, वर्ण वश्य, तारा, वर्ग और राशि स्वामी इन नव अंगों का विचार अवश्य करना चाहिये, **तभी गृहचैत्यालय शुभप्रद होता है।**

भावार्थ- देवालय में प्रतिष्ठाचार्य से पूछकर **अपने नाम, राशि आदि के अनुसार नामवाले तीर्थंकर की मूर्ति विराजमान करना योग्य है।**

५. गृहचैत्यालय सम्बन्धी सावधानियाँ

१. गृह चैत्यालय में शुद्ध वस्त्र पहनकर ही पूजा, अभिषेक आदि करना चाहिये। यदि भगवान् के बहुमान एवं मर्यादाओं का ध्यान नहीं रखा जायेगा, तो वह गृहस्थ के पतन, दरिद्रता एवं कुलक्षय का कारण बनेगा।

२. गृह चैत्यालय में प्रतिदिन अभिषेक एवं पूजन होना अति आवश्यक है। सूतक पातक के दिनों मे किसी अन्य जैनी भाई को बुलाकर अभिषेक पूजा करानी चाहिये।

३. चैत्यालय में सूर्यास्त के समय भगवान् की आरती अवश्य करनी चाहिये।

४. पूजन के द्रव्य बनाते समय चावल पीले करने के लिए केसर अथवा हरसिंगार के फूल प्रयोग करने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चाहिये, हल्दी या पीले रंग का प्रयोग कदापि न करें।

५. बाजार की धूप अशुद्ध होती है, चन्दन का बुरादा भी प्रासुक नहीं होता, अतः इनको या तो घर पर तैयार करें या लोंग कूटकर धूप बनायें। अगरबत्ती भी शुद्ध होनी चाहिये।

६. किसी भी रथयात्रा या उत्सव के अवसर पर मूर्ति स्पर्श करनेवाले को शुद्ध धुला हुआ धोती-दुपट्टा पहनना आवश्यक है। पेन्ट-शर्ट पहनकर मूर्ति स्पर्श कदापि न करें।

७. चैत्यालय में टेलीफोन, खण्डित मूर्ति, कागज-प्लास्टिक-काँच एवं एल्यूमिनियम आदि की मूर्तियाँ न रखें। ये पूजनीय नहीं होती हैं।

८. स्वर्गस्थ एवं जीवित गृहस्थों के तथा बीड़ी-साबुन आदि के विज्ञापनसहित भगवान् और मुनिराजों के चित्र नहीं लगावें। हिंसक पशुपक्षियों के चित्र भी न लगायें।

९. चैत्यालय में झाड़ू, कचरा, डस्टबीन, भोजन सम्बन्धी कच्ची पक्की सामग्री, गृहस्थी सम्बन्धी हल्की भारी वस्तुएँ, तिजोरी आदि न रखें। सिर्फ मंदिर से संबन्धित वस्तुयें ही रखें।

१०. जूँठे हाथ एवं मुँह सहित या जूता-चप्पल पहनकर, निद्रा के एवं शौच के कपड़े पहनकर, अधूरे वस्त्र पहनकर चैत्यालय में प्रवेश न करें। रजस्वला स्त्रियाँ कदापि प्रवेश न करें और दरवाजे पर भी न बैठें। इनकी मंदिर पर छाया पड़ना भी महा अशुभ है।

११. चैत्यालय से लगा हुआ शौचालय, मूत्रालय, कचराघर, जूते-चप्पल रखने का स्थान न हो।

१२. चैत्यालय के ऊपर की छत पर किसी को चलना फिरना नहीं चाहिये और उस छत पर अन्य सामान भी नहीं रखना चाहिये।

१३. सीढ़ियों के नीचे अथवा सेप्टिक टैंक के ऊपर चैत्यालय नहीं बनायें।

१४. चैत्यालय में धूल, गंदगी एवं मकड़ी के जाले न लगने दें तथा पूजन के समय टेलीविजन एवं फिल्मी संगीत की आवाज नहीं आनी चाहिये।

१५. शास्त्रभण्डार नैऋत्य या दक्षिण दिशा में बनायें और इसमें स्कूल की पुस्तकें, व्यापार की रसीदबुक, बहीखाते आदि लौकिक पुस्तकें या अन्य धर्म के शास्त्र बिल्कुल न रखें। मात्र जिनवाणी ही रखें।

१६. रसोईघर में, बैठक में, शयनकक्ष में, स्टोर में चैत्यालय कदापि न बनायें। ये अत्यन्त दोष को उत्पन्न करनेवाले तथा अशान्ति, दरिद्रता एवं ऋद्धि-सिद्धि को समाप्त करनेवाले होते हैं।

१७. यदि हमारा निवास छोटा है, घर में जगह ही नहीं है, चैत्यालय को वास्तुशास्त्रानुसार निर्मित नहीं कर पा रहे हैं, तो चैत्यालय नहीं बनाना चाहिये। अविनय पूर्वक जिनबिंब विराजमान करना उनकी पूज्यता एवं पवित्रता का ध्यान नहीं रख पाना हमारे जीवन में अनिष्ट करनेवाला है।

१८. वास्तुशास्त्र के विपरीत निर्मित मंदिर समस्त समाज को भी प्रभावित करते हैं और गृहस्वामी पर भी विपरीत प्रभाव डालते हैं, अतः गृहचैत्यालय बनाते समय वास्तु एवं प्रतिष्ठाशास्त्रों के निर्देशों का पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

१९. चैत्यालय में दिगम्बर, वीतरागी प्रतिमाओं के साथ सरागी देवीदेवताओं की प्रतिमा कदापि स्थापित न करें।

२०. जिन घरों में गृहचैत्यालय तो हैं, परन्तु उनकी पूजा व्यवस्था उचित रूप से नहीं की जा रही है, उनको चाहिये कि वे उन प्रतिमाओं को निकटस्थ जिनमंदिर में स्थापित करके उनकी पूजा भक्ति वहीं जाकर करें।

वर्तमान समय में उपर्युक्त सावधानियाँ रखना अत्यन्त कठिन हो गया है। लोगों ने बताया कि घर में जो वृद्ध माता-पिता हैं, वे मंदिर तक नहीं जा सकते, अतः उनके दर्शन पूजन के लिए ये चैत्यालय बनाये जाते हैं। उन महानुभावों से निवेदन है कि अत्यन्त मजबूरी की हालत को छोड़कर गृह चैत्यालय न बनाना ही श्रेयस्कर है। जिनप्रतिमा की भक्ति-पूजन यद्यपि परम्परा से मोक्ष का कारण है, परन्तु यदि अविनय या अशुद्धि रखी जाये, **तो वही प्रतिमा नरकादि-गमन का कारण बनती है।** अतः अपने गृहचैत्यालय के सम्बंध में इस लेख के अनुसार निर्माण तथा शुद्धि-सम्बन्धी समस्त कमियों को तुरन्त दूर करें। इस लेख का यही सद्अभिप्राय है। यदि कोई कमी अथवा जिज्ञासा हो, तो उसे अपने परिचित किसी भी प्रतिष्ठाचार्य को बुलाकर शीघ्र से शीघ्र ठीक कराना ही अपने परिवार एवं समाज के लिए कल्याणकारी होगा।

रजवाँस (जिला-सागर) म. प्र. पिन- ४७०४४०
मो. ९४२५६७२१५४, ९४०६५१८९७१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मत ठुकराओ धर्म सिखाओ गले लगाओ

आचार्य विद्यानंद मुनि

धर्म में श्रद्धा बनाए रखिए। यदि श्रद्धा से डिग जाएँ, तो फिर क्या बचेगा? वीतराग प्रभु में, श्रद्धा व भक्ष्य-अभक्ष्य के विचार पर दृढ़ रहेंगे, तो समाज को बाधा नहीं आएगी।

यदि आप समतावादी हैं, धर्मात्मा हैं, तो किसी का तिरस्कार मत करो, द्वेष मत करो। तिरस्कार से हमने बहुत हानि उठाई है। गलत कार्य का प्रायश्चित्त ही उसका दण्ड है। जाति-बहिष्कार से समाज को ही हानि होती है। अरे, प्रेम नहीं कर सकते हो, तो द्वेष भी मत करो। वह आज नहीं तो कल आपके प्रेमव्यवहार से अवश्य सुधर जाएगा।

पहले स्वयं आदर्श बनकर दिखाएँ, स्वयं मार्ग पर चलकर दिखाएँ, तो दूसरे उसे स्वयं अपनायेंगे, आपका अनुकरण करने लगेंगे।

भगवान् ऋषभदेव इस धरातल पर उत्पन्न हुए, उन्होंने प्रजापति के रूप में शासन कर यहाँ के नागरिकों को जीवन-यापन की विधि बताई। असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, व्यापार और कला से षड्विध विद्याएँ सिखायीं। जब राज-काज छोड़कर तपस्या की और केवलज्ञान प्राप्त किया तब, दिव्यध्वनि के माध्यम से गृहस्थों को, श्रावकों को उनके षड्आवश्यक कर्तव्य बताये-

देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्यायः संयमस्तपः।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने-दिने॥

दैनिकचर्या के दोष-निवारण हेतु ये छः उपाय (कर्त्तव्य) बताये। उनके समय में श्रमण, श्रमणी, श्रावक, श्राविका इस चतुर्विध संघ की स्थापना हो चुकी थी, जैसे चार दिशाएँ होती हैं, वैसे ही समाज की ये चार दिशाएँ हैं। यह चतुर्विध संगठन सामाजिक व्यवस्था व संगठन-शक्ति के लिए था। श्रमण अर्थात् साधु, श्रमणी अर्थात् साध्वी, श्रावक अर्थात् सद्गृहस्थ और श्राविका अर्थात् सद्गृहस्थ महिला। ये चारों पारिभाषिक धार्मिक शब्द हैं। श्रावक शब्द का कोष में अर्थ है 'आस्तिक', आस्तिक अर्थात् जिसको आत्मा पर विश्वास है। श्रावक अर्थात् श्रद्धायुक्त, श्रद्धालु आदि। इस शब्द की अनेक परिभाषाएँ, अर्थ हैं, पर 'आस्तिक' अर्थ सर्वाधिक प्रमुख है। श्रावक, जो रुचिपूर्वक गुरुमुख से श्रवण करे, स्वयं वाचना करे, स्वाध्याय करे, अध्ययन करे, प्रथमानुयोग आदि चारों अनुयोगों का अध्ययन करे।

प्रायः कहा जाता है- देश के निर्माण व उन्नति के लिए आदर्श नागरिक होने चाहिए। जनपद में रहनेवाले सभी नागरिक तो होते हैं, पर उन्हें 'आदर्श' होना चाहिए। नागरिक के साथ 'आदर्श' और जोड़ा जाता है, यह सार्थक है। सामान्यतः देश के सभी वासी नागरिक हैं, पर आदर्श देश के नागरिक ही आदर्श हैं, अथवा जहाँ के नागरिक आदर्श हैं, वह देश भी आदर्श है। जैसे देश की उन्नति, प्रगति के लिए 'आदर्श' नागरिक की आवश्यकता है, वैसे ही समाज की प्रगति, उन्नति के लिए भी आदर्श लोगों की आवश्यकता तो होती ही है। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य आवश्यकताएँ भी होती हैं।

कोई समाज एक दिन में नहीं बनता। उसकी परम्परा अविच्छिन्न काल से चली आती है, तभी वह समाज सुदृढ़ बनता है। जैसे हमारे समाज की परम्परा भगवान् ऋषभदेव से चली आ रही है। पहले कल्पवृक्ष का युग था। उस युग से निकल कर हम कृषियुग में आये, वहाँ से निकलकर आज के विज्ञान व कलयुग में आ गये। काल बदलता रहता है, युग बदलता है। समय बदलता है, क्षण-प्रतिक्षण पर इनमें जो अविच्छिन्न चला आ रहा है वह है 'धर्म'। उस 'धर्म' की परम्परा के कारण ही हम भगवान् ऋषभदेव से आज तक अविच्छिन्न चले आ रहे हैं। हमारा समाज परम्परागत रूप से चला आ रहा है। देश में अनेक महापुरुष हुए, उन्होंने अनेक सम्प्रदाय चलाये, उनमें से अधिकांश आज, काल के गोद में समा गये। उनके ग्रन्थ, उनके अनुयायी आज नहीं रहे, केवल उनके नामोल्लेख ही मिलते हैं, जैसे चार्वाक के ग्रन्थ 'तत्त्वोपलब्धि' का केवल उल्लेख ही मिलता है, सांख्यमत का 'सांख्यसूत्र' मिलता है, वैशेषिक का 'वैशेषिकसूत्र' मिलता है पर उनके अनुयायी नहीं मिलते।

श्रावकों के साथ ऐसा नहीं है। श्रावक संख्या मे अवश्य घट-बढ़ गये, पर उनकी परम्परा अविच्छिन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रूप से चली आ रही है, बाधाएँ अनेक आईं, पर वे खत्म नहीं कर सकी, हम तब भी चट्टान की तरह खड़े रहे।

प्रत्येक समाज में काल के अनुसार, काल के प्रभाव से दोष उत्पन्न हो जाते हैं, वे दूर भी होते हैं। चौबीस तीर्थंकरों के काल के बीच में छः बार मुनि नहीं रहे, छः बार मुनिपरम्परा क्षीण हुई, केवल गृहस्थ ही रहे, तो समाज में भी शिथिलताएँ आ गईं, कुछ दोष उत्पन्न हो गए। श्रावक व साधु धर्म-रथ के दो पहिये हैं, दोनों की गति एक-दूसरे पर आधारित है। जब तक ये एक दूसरे पर अवलम्बित हैं, तब तक धर्म की स्थिति मजबूत है। आचार्य शान्तिसागरजी महाराज कहते थे, आहार के समय श्रावक का हाथ ऊँचा रहता है और साधु का हाथ नीचा। आहार समाप्त होने के बाद गृहस्थ प्रणाम करते हैं, तब गृहस्थ का हाथ नीचे व आशीर्वाद देने के लिए साधु का हाथ ऊँचा हो जाता है, इस प्रकार कभी श्रावक का, तो कभी साधु का हाथ ऊँचा रहता है, दोनों एक दूसरे से बँधे हुए हैं। इसके लिए कहा- **साधु सदाचारी गृहस्थ से ही आहार ले और गृहस्थ भी साधु देखकर आहार दें।** दोनों की क्रिया पर एक दूसरे का अंकुश है। यदि ऐसा नहीं होगा तो अंकुश समाप्त हो जाने से सामाजिक व्यवस्था खत्म हो जाएगी। साधु सद्गृहस्थ से आहार न ले, कहीं भी होटल-बाजार में खा ले, तो वह अपने मार्ग से भटक जाएगा, स्वैराचारी हो जाएगा।

चित्रं जैनी तपस्या हि, स्वैराचारविराधिनी।

इसी परम्परा के कारण आज कलियुग में साधु स्वैराचारी नहीं हैं, वह श्रावक के घर जाकर ही आहार लेते हैं और इसलिए श्रावक भी उनको आहार देने के लिए तत्पर रहते हैं। दोनों आहार और ज्ञान का आदान-प्रदान करते हैं। जिस घर में कोई अभक्ष्य पदार्थ पड़ा हो, साधु वहाँ आहार नहीं लेगा, इस विचार से गृहस्थ सावधान रहता है और कई बुराइयों से बच जाता है। इसी प्रकार साधु की आहर सम्बन्धी कोई गलत क्रिया श्रावक देखते हैं, तो श्रावक उसे बतावें कि आपकी चर्या में यह नहीं होना चाहिए। इस प्रकार एक दूसरे पर अंकुश की परिपाटी चली आ रही है।

न्याय से धनोपार्जन करना श्रावक का कर्त्तव्य है। **'अन्याय करो या झूठ बोलो'** कोई धर्म ऐसा नहीं कहता। **'सत्य बोलो'** सब यही कहते हैं। यह बात पृथक् है कि हर व्यक्ति का सत्य पृथक् होता है। सर्वथा सत्य कोई नहीं बोलता, उसमें असत्य का अंश होता है और इसी प्रकार सर्वथा असत्य भी कोई नहीं बोलता, उसमें भी सत्य का अंश अवश्य होता है। कोई सर्वथा सत्य व सर्वथा झूठ नहीं बोलता। पूर्ण सत्य तो कभी बोला ही नहीं जा सकता, शब्दों में इतनी क्षमता, इतनी ताकत ही नहीं है, शब्द पूर्ण सत्य बोलने में असमर्थ हैं। जो भी मुँह से बोला जाएगा वह द्वितीय श्रेणी का असत्य होगा। पूर्ण सत्य तो आत्मानुभव आत्म-साक्षात्कार का विषय है। इसीलिए **''सत्यं शिवं सुन्दरं''** का क्रम रखा जो सत्य है, वही शिव है अर्थात् कल्याणकर और सुन्दर है, वही मोक्ष का कारण है।

श्रावक, यह एक सामान्य शब्द है, नाम है। पं० आशाधरसूरि ने सागारधर्मामृत में कहा-

नामतः स्थापनातोऽपि जैनः पात्रायतेतराम्।
स लभ्यो द्रव्यतो धन्यैर्भावतस्तु महात्मभिः॥ ५४॥

समाज में कुछ लोग नामधारी होते हैं अर्थात् कुछ लोग नामधारी जैन हैं, जो न कभी मंदिर जाते हैं, न कभी किसी सामाजिक समारोह आयोजन में, वे तो बस जैनपरिवारों में जन्म होने से जैन हैं।

'प्रतिष्ठातिलक' में तीर्थंकर, श्रमण, श्रावक सभी के नाम, स्थापना, द्रव्य एवं भाव के आधार पर चार प्रकार से विभाग किये गये हैं। **नाम श्रावक** वे हैं, जो जैनकुल में जन्में हैं, जिनका आचरण श्रावक के अनुकूल नहीं है। किसी मूर्ति-चित्र आदि में श्रावक की स्थापना करना **स्थापना श्रावक** है, जैसे किसी श्रावक का चित्र। **द्रव्य श्रावक** वह है, जो श्रावक की परिपाटी व परम्परा निभाता है, परन्तु उसमें श्रद्धा नहीं होती है जैसे मंदिर जाना, चावल चढ़ाना आदि क्रिया करे, किन्तु तत्त्वों पर श्रद्धा न हो। **भाव श्रावक** वह है जिसे धर्म पर दृढ़ आस्था होती है, श्रद्धा होती है, जो आचरण में, आचार-विचार में सतर्क रहता है, रागी देवी-देवताओं को नहीं पूजता।

जैसे भारत का संविधान है, वैसे ही हमारा भी संविधान है। इन्द्रनन्दि श्रावकाचार में लिखा है-

सगुणो निर्गुणो वापि श्रावको मन्यते सदा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नावज्ञा क्रियते तस्य तन्मूला धर्मवर्तना॥ ९॥

श्रावक में यदि कुछ कमी है, आचरणगत कोई दोष हो, तो उसका तिरस्कार मत कीजिये। उसे समझाइये, वात्सल्यभाव से उसका हृदयपरिवर्तन कीजिए। जैसे बेटा कोई गलत काम कर देता है, तो पिता उसे प्यार से समझाता है– बेटे! ऐसा मत करो। वह वात्सल्य से उसका हृदयपरिवर्तन करता है। इसी प्रकार का व्यवहार पथ से विचलित श्रावक के साथ करना चाहिये। चारित्र-मोहनीय कर्म के उदय से कुछ दोष उसमें आ गये हैं, इसलिए उसका तिरस्कार मत कीजिए। पापी को धर्म समझाइये। पापी को ही तो सुधारना है। पुण्यात्मा, जो धर्म से विमुख नहीं है, उसे क्या सुधारेंगे? मैले कपड़े को ही तो साफ करना है। जो साफ है उसे क्या साफ करेंगे? इसीलिए कभी किसी अशुभ कर्म के तीव्र उदय से कोई श्रावक कुछ भटक जाता है, तो उसका तिरस्कार मत कीजिये। आपको एक घटना बताता हूँ–

फलटण में एक परिवार था। उसके सभी सदस्य धार्मिक प्रवृत्ति के थे। दुर्योग से उस परिवार का एक लड़का व्यसनों में फँस गया। कुछ समय बाद वह घर छोड़कर चला गया और एक वेश्या के घर रहने लगा। दस-बारह वर्ष व्यतीत हो गये। एक बार उसके घर में विवाह का अवसर आया। घर के प्रमुख बहुत धार्मिक थे, प्रतिमाधारी और बहुत समझदार, उन्होंने घर के अन्य सदस्यों से कहा– अरे! शादी में तो उसे बुलाओ। निमंत्रण-पत्र देकर आओ। लड़कों ने कहा– हम उसे वहाँ जाकर निमन्त्रण-पत्र दें? हम नहीं जाते। उन्होंने कहा– अच्छा! घर के बाहर से आवाज लगाकर कह देना कि हमारे घर में शादी है, तुम्हें ताऊजी ने बुलाया है। आखिर उससे खून का सम्बन्ध है। घर का एक सदस्य गया और बाहर रास्ते से कह कर आ गया– तुम्हें ताऊजी ने बुलाया है, घर में शादी है। वह लड़का सोचता रहा– ताऊजी ने मुझ जैसे पापी को क्या याद किया होगा? वे स्वयं कितने धर्मात्मा हैं। उन्होंने याद नहीं किया होगा, यह मुझे बहका गया है। यह सोचकर वह विवाह में नहीं गया। विवाह के दिन ताऊजी ने देखा वह नहीं आया। उन्होंने उस लड़के से पूछा, जो उसे बुलाने गया था–तुमने उसे सूचना दी थी या नहीं? उसने बताया– ताऊजी, कह तो आया था। जाओ अभी बुलाकर लाओ ताऊजी ने कहा। सभी चुप रहे, वहाँ कोई नहीं जाना चाहता था। ताऊजी समझ गये। वे स्वयं चुपचाप चल पड़े। वहाँ जाकर उस बेटे को पुकारा। उसने देखा– ताऊजी स्वयं आये हैं मेरे पास! बहुत आश्चर्य हुआ उसे। नीचे उतर कर आया। ताऊजी ने कहा–चलो, घर में आज विवाह है। वह ताऊजी को इन्कार नहीं कर सका और साथ चल दिया। घर पहुँचकर ताऊजी उसे अपने साथ मंदिर ले गये, तिलक लगाया। खाना खाने बैठे तो उसे अपने पास बैठाया। सब खाने लगे पर वह रो रहा था। मन में सोच रहा था– मैं इतना पापी, मैंने घर की मान-मर्यादा खो दी और ताऊजी मुझे अपने पास बैठा कर भोजन करा रहे हैं! मन पश्चात्ताप से भरा था। विवाह सम्पन्न हो गया। ताऊजी ने कहा जाओ, अब तुम जा सकते हो। वह रोने लगा, ताऊजी के पैर पकड़ लिये। ताऊजी! अब मैं कहीं नहीं जाऊँगा, यहीं रहूँगा। मैंने आप सभी को बहुत दुःखी किया है, मुझे माफ कीजिये, प्रायश्चित्त दीजिए। उसने धीरे-धीरे व्रत धारण कर लिये और फिर साधु हो गया। समाधिमरण द्वारा देहत्याग किया। बहेरा गाँव में आज भी उसकी समाधि बनी हुई है, जहाँ बड़े-बड़े आचार्य, मुनि वगैरह जाते हैं।

इसलिए इन्द्रनन्दि आचार्य ने कहा– कोई निर्गुणी है, तो भी उसका तिरस्कार मत कीजिए। वात्सल्य से उसे परिवर्तित कीजिये। जो नामधारी जैन हैं, वह भी समाज के काम आता है। अच्छे प्रशासक की भी यही नीति होती है। छोटा अपराधी है उसे कुछ समय के लिए सजा देकर छोड़ देते हैं, ताकि वह सुधर जाय। उसे फाँसी तो नहीं दे देते। हमारे संविधान में भी यही कहा–सगुण तो आदरणीय हैं ही, पर निर्गुण भी निरादरणीय नहीं है। वह तिरस्कार करने योग्य नहीं है। आप समतावान् हैं, धर्मात्मा हैं, तो उससे द्वेष मत करो। अरे प्रेम नहीं कर सकते हो, तो द्वेष भी मत करो।

लालबहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्रित्व-काल की बात है। एक तस्कर था, उन दिनों उस पर केस चल रहा था। उसी काल में भारत-पाक युद्ध हुआ। उस तस्कर ने शास्त्री जी को कहलवाया– मैं आप से बात करना चाहता हूँ। मैं आपको युद्ध-सम्बन्धी कोई गुप्त बात बताना चाहता हूँ। शास्त्रीजी ने उसे बुलाकर बात की। तस्कर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने बताया-पानी की जो नहर उधर से गुजरती है, उसका रास्ता बदल दीजिये। इससे शत्रु-पक्ष की एकत्र सारी शस्त्र-सामग्री पानी में डूब जायेगी। शास्त्रीजी ने जवाब दिया- ठीक है। पता लगाकर ऐसा करेंगे। यदि इस कार्य में तुम्हारे बताये अनुसार सफलता मिलती है, तो तुम्हारे दोष माफ कर दिये जायेंगे। पत्रकारों ने इसकी टिप्पणी में लिखा- कभी-कभी खोटा पैसा भी काम आ जाता है। इसलिए उसे भी कूड़े में मत फेंकिये।

इसी प्रकार कोई श्रावक थोड़ी सी गलती करता है, तो उसका तिरस्कार, बहिष्कार मत कीजिये। उसे सीने से लगाइये, समझाइये। आज नहीं तो कल, वह प्रेमपूर्ण-व्यवहार से अवश्य सुधर जायेगा। जब उसका चारित्रमोहनीय कर्म का उदय समाप्त होगा, तब वह सुधरेगा। यह मत समझिये कि वह बिल्कुल बेकार है। महिलाएँ ये सोचकर फटा कपड़ा भी सहेज कर रख लेती हैं कि जमीन पोंछने के काम आएगा,

सम्यग्दृष्टि कभी किसी का तिरस्कार नहीं करता। हम तिरस्कार करने के अधिकारी भी नहीं हैं। दूसरों के जीवन को आदर्श बनाने की चेष्टा मत कीजिये। दूसरों के पीछे लग गये, तो स्वयं ठन-ठन रह जायेंगे। पहले स्वयं आदर्श बन कर दिखायें, स्वयं उस मार्ग पर चल कर दिखायें, तो दूसरे आपको देखकर उस मार्ग को स्वयं अपना लेंगे, आपका अनुकरणकर लेंगे।

कुछ वर्ष पहले की बात है, एक दिन जनता पार्टी के नेता श्री के.के. हेगड़े की पत्नी आईं। उनके साथ धर्मस्थल के हेगड़े परिवार की महिला भी थीं। धर्मस्थल का हेगड़े परिवार जैनपरिवार है और श्री के.के. हेगड़े का परिवार वैष्णव परिवार है। मैंने उनसे पूछा- आप भी हेगड़े, ये भी हेगड़े। पर एक जैन हैं, एक वैष्णव, यह कैसे? इस पर श्रीमती के.के. हेगड़े ने बताया- सौ वर्ष पूर्व हमारा परिवार भी जैन-धर्मावलम्बी था। उस समय हमारे परिवार के एक व्यक्ति ने शिकार कर दिया, जिसके कारण समाज ने उनका (जाति) बहिष्कार कर दिया। हमारा परिवार प्रभावशाली परिवार था। हमारे परिवार के साथ दस हजार अन्य व्यक्ति भी जैनधर्म त्याग वैष्णव बन गये। किन्तु वर्ष भर में एक दिन जिस दिन हम जैन से वैष्णव बने थे, उस दिन हम अभी भी जैनपरम्परा का निर्वाह करते हैं, जैनमंदिर जाते हैं, उसी प्रकार का सात्त्विक भोजन करते हैं। वह दिन हमें स्मरण कराता है कि हम भी कभी जैन थे।

सोचिये! तिरस्कार करने के कारण हमने कितनी हानि उठाई है। यदि कोई गलत कार्य करता है, तो उसे सजा दे देनी चाहिए, प्रायश्चित्त कराना चाहिए। जाति बहिष्कार से समाज को कितनी हानि होती है।

इसी प्रकार अहमदाबाद में भी एक 'साराभाई' परिवार है, जो पहले जैन था। पर किसी कारणवश बहिष्कृत हो जाने से वे भी अन्य धर्म मानने लगे।

मानव-जीवन विचित्र है, अनेक संकल्प-विकल्पों से भरा है यह। यदि भूल से कोई गलत कार्य कर लिया, तो उसे बहिष्कृत मत कीजिए। हम नित्य ही तो शास्त्र में पढ़ते हैं कि अंजन चोर, विद्युत चोर आदि बड़े-बड़े अपराधियों को, गलती करनेवालों को हमारे आचार्यों ने मार्गदर्शन दिया, सुधारा, उन्हें कुपथ से सुपथ पर मोड़ा। पर आज हम इस बात को नहीं अपनाते। केवल इन घटनाओं को पढ़ लेते हैं। आज समाज संकुचित हो गया है। इतिहास और आज की परिस्थिति दोनों को देखकर कार्य कीजिये। मेरा यह सब कहने का तात्पर्य यह नहीं है कि आप जान-बूझ कर गलती करते जायें और फिर समाज से वात्सल्यभाव की अपेक्षा करें। साथ में कहें कि हमें तो महाराज जी ने छूट दे दी। मेरा यही अभिप्राय है- श्रावकों के नियमों का पालन करते हुए एक आदर्श मानव बनिये। यदि उसमें भूल से कोई दोष आ जाय तो प्रायश्चित्त कराइये।

आचार्य कुन्दकुन्द ने कहा है- जितनी शक्ति है उतना कीजिये। यदि नहीं कर सकते तो श्रद्धा कीजिये, श्रद्धा से मत डिगिये।

जदि सक्कदि कादुं जे पडिकमणादिं करेज्ज झाणमयं।
सत्तिविहीणो जा जइ सद्दहणं चेव कायव्वं॥ १५४॥

नियमसार

कोई व्यक्ति स्वयं रात में भोजन करना नहीं छोड़ सकता, तो वह यह नहीं कहे कि क्या रखा है दिन में भोजन करने में? रात में भोजन करने से क्या हो जाता है? वह यह कहे- रात में भोजन नहीं करना चाहिये, पर मैं मजबूर हूँ इसलिए करता हूँ। अपनी कमजोरी या गलती के कारण धार्मिक मान्यता, परम्परा व सिद्धान्त का उपहास न करें, अवमानना न करें। आचार्यों

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ने कहा है-

कीजे शक्ति प्रमाण, शक्ति बिना सरधा धरे।

धर्म में श्रद्धा बनाये रखिये। यदि श्रद्धा से डिग गए तो कठिन हो जाएगा। यदि श्रद्धा से भ्रष्ट हो गये तो फिर क्या बचेगा?

आचार्य सोमदेवसूरि से कुछ लोगों ने पूछा अभी तो शासक अच्छे हैं। उनके संरक्षण से आपका धर्म चल रहा है। जब कलियुग आयेगा, शासक भी धर्मपरायण नहीं होंगे, तब आपका धर्म कैसे चलेगा?

सर्व एव हि जैनानाम्, प्रमाणं लौकिकोविधिः।
यत्र सम्यक्त्वहानिर्नो, यत्र नो व्रतदूषणम्॥

श्रद्धा से मत डिगिये, भक्ष्य-अभक्ष्य का विचार रखिये, मद्य-मांस आदि का सेवन मत कीजिये। यदि ये दो नियम भी आप पालेंगे, तो कैसा भी काल हो, कैसा भी शासक हो, आप निराबाधरूप से अडिग रह सकते हो, पर ये दो बातें दृढ़ होनी चाहिये।

हमारा संविधान बहुत विशाल है विस्तृत है। जीवन के सारे अंग हैं उसमें। यह भी उल्लेख है कि कन्या कहाँ देनी चाहिए-

कुलं च शीलं वयुर्वयश्च विद्या च वित्तं च सनातनं च।

वर अच्छे कुल का हो, शीलवान् हो, वय भी मेल खाती हुई हो (सुमेल हो), विद्यावान् हों, आजीविका सहित हो, नीरोगी हो और धार्मिक प्रवृत्तिवाला हो। ये सात गुण जिसमें हो, वह उपयुक्त वर है, उसके साथ कन्या अपने जीवन को सुखी बना लेगी और निर्बाधरूप से श्रावकधर्म का पालन कर सकेगी।

आज समाज में बहुत सी रूढ़ियाँ व दोष फैल रहे हैं, उन पर भी ध्यान देना चाहिए। सिद्धान्तों पर दृढ़ रहें। नाम, स्थापना, द्रव्य व भाव के अनुसार जितना बने उतना निभाइये। दुनिया में कितने ही परिवर्तन हों, यदि हम वीतराग प्रभु में श्रद्धा व भक्ष्याभक्ष्य के विचार पर दृढ़ रहेंगे, तो समाज को बाधा नहीं आयेगी और वह उन्नतशील होगा।

'सन्तसाधना' (मई-जून २००८)
से साभार

ग्रन्थ-समीक्षा

तीर्थक्षेत्र-पर्वादि-वंदनाष्टक शतक

कृति- 'तीर्थक्षेत्र पर्वादि वंदनाष्टक शतक' (पूर्वार्द्ध), **कृतिकार**- प्रतिष्ठाचार्य पं० पवन कुमार जैन शास्त्री, 'दीवान' **प्रकाशक**-अ.भा.दि. जैन शास्त्रि परिषद्, **संस्करण**- प्रथम। सहयोग राशि 50 रुपया (आगामी प्रकाशनार्थ) **प्राप्ति स्थान**- श्रीमती मनोरमा 'दीवान', श्री महावीर भवन महिमा लेडीज एवं स्टेशनरी सेन्टर, पीपलवाली माता, स्वामी स्कूल के पास, दत्तपुरा मोरेना (म.प्र.) फोन 07532-228397 मो. 9425364534, 9981648844

प्रस्तुति कृति में श्री दीवान जी द्वारा रचित 100 अष्टक काव्य हैं। जिसमें भारतवर्ष के समग्र प्रान्तों के 80, (सिद्धक्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, कला क्षेत्रादि का) क्षेत्र प्रादुर्भाव, महत्त्व, सरंचना / आगामी कार्ययोजना-परक काव्य वर्णन किया गया है। 20 अष्टकों में जैनसंस्कृति के शाश्वत एवं समसामयिक पर्वों एवं श्रमण स्वरूप व सराकादि का उल्लेख है। इनमें वही क्षेत्र सम्मिलित हैं जिनके विवरण / परिचयादि पूर्व में प्राप्त हुये थे। जो क्षेत्र अवशिष्ट रह गये हैं, उनके सांगोपांग विवरण प्राप्त होने पर उनका वंदनाष्टक उत्तरार्द्ध कृति में प्रस्तुत किया जायेगा। कृति क्षेत्रवंदना व पर्व माहात्म्य विषयक होने से सर्वोपयोगी है, संग्रहणीय, पठनीय है।

विशेष- जो भी पुस्तकालय, वाचनालय सरस्वती भण्डार के व्यवस्थापकगण या अन्य श्रद्धालु पाठकगण कृति प्राप्ति के इच्छुक हों, वे कृपया पूरा, पता फोन नं., मोबाईल नं. लिखकर 30 रूपया पोस्टेज भेज कर कृति मँगा लेवें।

स० सिं० अरिहंत जैन, मुरैना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रतिमाओं का स्पर्श करना आगम अनुकूल नहीं है

आचार्य श्री मेरुभूषण जी

'दिगम्बर जैन ज्योति पत्रिका' सितम्बर २००८ के अंक में पेज ७ पर प्रकाशित गणिनी आर्यिका १०५ सुपार्श्वमति माता जी का यह स्पष्टीकरण कि 'क्षुल्लक जी को प्रतिमास्पर्श करने का निषेध नहीं' आगम प्रमाण नहीं है। पाठकगण स्वयं विवेचना करें कि क्षुल्लक को मुनि का लघुनन्दन कहा गया है। उसकी आहार सम्बन्धी कुछ क्रियाओं को छोड़कर वह मुनिसमान ही है। क्षुल्लक केवल आहार को जाता है तभी शुद्ध है, शेष अवधि अशुद्ध माना गया है। अतः आगम में कहीं भी क्षुल्लक को प्रतिमा के चरण छूने का उल्लेख नहीं है। इतना ही नहीं आचार्य, उपाध्याय, मुनि, एलक, क्षुल्लक को भी आगम में चरण छूने को नहीं कहा गया। यदि मुनि को भगवान् के चरण छूने का प्रावधान होता, तो मुनि के २८ मूलगुणों में उसका प्रावधान होता। २८ मूलगुणों में मुनि को ६ आवश्यक कार्य प्रतिदिन करने होते हैं, जिनमें सामायिकी, स्तुति, वन्दना, कायोत्सर्ग, प्रतिक्रमण और प्रत्याख्यान हैं। मंदिर जी में मुनि स्तुति, वन्दना, कायोत्सर्ग करते हैं। स्तुति का आशय है २४ तीर्थंकरों अथवा उनमें से किसी एक तीर्थंकर के गुणों का स्तवन करना, वन्दना का आशय है तीन परिक्रमा करना, कायोत्सर्ग का मतलब है अपने पुद्गल से ममत्वभाव छोड़कर अपनी आत्मा के वीतराग स्वरूप को निहारना, स्वानुभूति, आत्मानुभूति और आत्मदर्शन करना। प्रतिमा के चरण छूने का स्पष्ट आशय है परद्रव्य में आसक्तिभाव तथा अचेतन प्रतिमा में आसक्तिभाव। मोक्षमार्गी वह है, जो अपने पुद्गल में बैठे अपने चैतन्यआत्मा के वीतराग-भाव को निहारकर स्वानुभूति, आत्मानुभूति कर आत्म-दर्शन करे, क्योंकि निश्चय से मेरी आत्मा ही सिद्धात्मा है, वीतराग है, निरंजन एवं परमात्मा है। फिर मोक्षाभिलाषी को अचेतन प्रतिमा के चरण छूने परद्रव्य-आसक्ति एवं अचेतन-आसक्तिभाव का दोष आवेगा। श्रावकों के व्यवहार धर्मपालन हेतु आचार्यों ने सूरि-मंत्र देकर श्रावकों के लिये मूर्तिपूजन, स्तुति, वन्दना के योग्य बना दिया है, ताकि श्रावकों के व्यवहारधर्म का पालन हो सके और उनको मोक्ष का मार्ग मिल सके। यदि श्रावक का व्यवहारधर्म ही लोप हो गया, तो उसे मोक्षमार्ग ही नहीं मिल सकेगा। यदि सिद्धशिला पर वास नहीं होगा, तो २००० सागर बीतने पर उसे नियम से निगोद ही जाना होगा।

किसी विद्वान्, साधु-साध्वी को भगवान् के चरण छूने का प्रमाण मिले, तो शास्त्र के आधार पर स्पष्ट करें।

साधु का कार्य स्व-आत्मा के स्वरूप का चिन्तवन वीतरागता को निहारना, स्वानुभूति, आत्मानुभूति और आत्मदर्शन करना मात्र है। आत्मानुभूति ही मोक्षमार्ग है। आत्मदर्शन साक्षात् मोक्ष है। जो वीतराग-समता सहित है। ज्ञान-दर्शन-चेतना स्वरूप है।

गौतम गणधर ने भगवान् महावीर से पूछा कि भगवन्! मुझे केवलज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं हो रही है, तो भगवान् ने बतलाया कि तुम्हें मुझसे राग हो गया है, जिससे परद्रव्य-आसक्तिभाव से तुम्हारा गुणस्थान गिर गया, जब कि केवलज्ञान की प्राप्ति तेरहवें गुणस्थान में होती है। भगवान् महावीर को दीपावली के दिन प्रातःकाल की वेला में मोक्ष हो गया, तो परद्रव्य-आसक्तिभाव का माध्यम हट गया, तो गौतम गणधर को, उसी दिन सायंकाल की वेला में केवलज्ञान हो गया और भगवान् कहलाये।

अतः आचार्य, उपाध्याय, मुनि, एलक, क्षुल्लक को परद्रव्य-आसक्तिभाव एवं अचेतन द्रव्य-आसक्तिभाव के दोष से बचने के लिये अपने पुद्गल में बैठे अपनी चैतन्यआत्मा के वीतराग स्वरूप का दर्शन करना चाहिए, उससे स्वानुभूति, आत्मानुभूति एवं आत्मदर्शन होगा। आत्मानुभूति ही मोक्षमार्ग है, आत्मदर्शन ही साक्षात् मोक्ष है, जो वीतरागता-समता सहित है। जिसका ज्ञानदर्शन चेतना स्वरूप है।

आजकल हमारे कुछ साधु-साध्वी बहुत से कार्य आगम की अनदेखी कर करने लगे हैं। जैसे श्रावक-श्राविका के हाथ में मौली बाँधना और केशर से टीका करना, प्राचीनकाल में वैष्णवमत के पंडित इस कार्य को करते थे, उन्हें दक्षिणा मिलती थी, मगर वैष्णवों के साधु नहीं करते थे। मगर वीतरागता की दुहाई देनेवाले साधुओं ने वैष्णव पंडितो का कार्य अपने हाथ में ले लिया, जन्मपत्री बनवाना, विवाह का मुहूर्त बताना, विवाह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

होगा या नहीं, विवाह के दोष गुण बतलाना, हस्तरेखा देखना, संकटमोचन करना, तंत्र-मंत्र, वैद्य की क्रियाएँ करना, दवा देना, शान्तिधारा बोलना, विधान कराना, मंदिर बनवाना, सट्टे-बट्टे के नम्बर बतलाना, लॉटरी के नम्बर बतलाना, घर-घर जाकर पंडितों की तरह विधान कराना, जन्मजयन्ती, दीक्षाजयन्ती मनवाना, बड़े-बड़े पोस्टर, पैम्पलेट, फोटो छपवाना, रथयात्रा में जाना, ख्यातिलाभ के लिये धन खर्च करना, आराम का जीवन बिताने के लिए धनसंग्रह करना, रात्रि में बोलना, मन्दिर जी में नौ-दस बजे तक बैठकर बाते करना, रात्रि में अपनी एवं भगवान् की आरती कराना, अपनी प्रशंसा के मुक्तक सुनना। इसके लिये बड़े-बड़े पोस्टर, पैम्पलेट छपने लगे। शास्त्र-स्वाध्याय छूट गया, परिणामस्वरूप जैनधर्म के वीतरागभाव का लोप हो रहा है। वीतरागता केवल नग्न रहना मात्र रह गई, बल्कि गृहस्थ से अधिक परिग्रह आज के दिगम्बर साधु-साध्वी, एलक, क्षुल्लक के पास रहने लगा, क्षुल्लक-एलक हवाई-जहाज की यात्रा करने लगे। मोबाइल पर कुछ साधु-साध्वी, एलक, क्षुल्लक घंटों वार्ता करने लगे। फ्रिज, कूलर, पंखा, ए.सी. आदि का इस्तेमाल होने लगा, दूरदर्शन, देखने लगे, कम्प्यूटर का उपयोग करने लगे। परिणाम स्वरूप 50 से 100 पिच्छी ऐसी हैं, जिनके कुशील की चर्चा व्यक्तिगत चर्चाओं में श्रावक करने लगे। दिखावा मात्र को दिगम्बर-स्वरूप रह गया है। एक आचार्य रात्रि दो बजे अपने संघ के साधुओं और श्रावकों को लेकर सम्मेदशिखर जी की वन्दना को गये। रात्रि में ही भगवान् पद्मप्रभु की टोंक पर विधान कराया, महाव्रत और समिति का पालन केवल जिह्वा पर रह गये, आचरण में नहीं। अपने नाम की ख्याति के लिये क्षेत्र घोषित कर जहाँ समाज नहीं है, वहाँ करोड़ों रु. पानी की तरह बहाया जा रहा है। पुराने तीर्थों की रक्षा नहीं हो पा रही है, नये तीर्थ बनाये जा रहे हैं। 30-40 साल बाद इन नये तीर्थों पर असामाजिक तत्त्वों द्वारा कब्जा किया जावेगा और दिगम्बर-समाज को इन तीर्थों की रक्षा हेतु सदैव मुकदमों का ही सामना करना होगा। जैनसमाज सोया हुआ है, अथवा चन्द लोग अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए साधु-साध्वी से मिलकर शिथिलाचार कर रहे हैं। साधुओं के नाम पर मंच बन रहे हैं। वे ही साधु की प्रशंसा, ख्याति फैलाने में संलग्न हैं। कुछ साधु गाड़ी में ही सामायिकी-चौका, आहार आदि करने लगे हैं। गर्म-गर्म खाना खाते हैं, बर्फ खाते हैं, गैस, अँगीठी जलती रहे, पंखा चलता रहे, बिजली जलती रहे, आहार के समय अन्तराय नहीं पालते, पंखा के नीचे आहार करने लगे, तकिया लगाने लगे आदि। आज जो साधु आगमविरोधी आचरण अपना रहे हैं, नियम से निगोद जावेंगे तथा 56 करोड़ श्रावक, जो इन कार्यों की अनुमोदना कर रहे हैं, निगोद जावेंगे। अब वैष्णव- मत एवं जैनधर्म में केवल नग्नता का अन्तर रह गया है।

विद्वानों से मेरा आग्रह है कि निजी स्वार्थों को छोड़कर शिथिलाचार की प्रक्रिया रोकने के लिए कठोर कदम उठावें, संघ की संख्या बढ़ाने को बिना परीक्षण के दी जा रही दीक्षा को रोका जाय। पुनर्दीक्षा पूर्व आचार्य की राय के बिना न दी जाय। 90 प्रतिशत पुनर्दीक्षा उनको दी गई, जो चारित्र से भ्रष्ट हैं। कहने लगे कि हम बीमार हो गये थे, इसलिये कपड़ा पहने थे। कुछ साधु महिलाओं से पैर छुवाने लगे। यहाँ तक वैय्यावृत्ति कराने लगे हैं। माता जी पुरुषों से पैर छुवाने लगी हैं। ऐसे आचरण को वे शीलभंग का दोष नहीं मानते हैं। अतः शिथिलचार रोकने को कड़े कदम उठाना आवश्यक है।

त्यागी-व्रती आश्रम, मधुवन शिखर जी
जिला-गिरीडीह (झारखण्ड)

पूज्य क्षमासागर की जीवनी

सन्तशिरोमणि प० पू० आचार्य विद्यासागर जी के सुयोग्य शिष्य पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी के २८वें संयमदिवस पर विद्यासागर-शिक्षा-समिति शीघ्र ही एक पुस्तिका का प्रकाशन करने जा रही है।

जहाँ जहाँ मुनिश्री के चातुर्मास, ग्रीष्मकाल, शीतावकाश सम्पन्न हुए हों, उनके व्यक्तित्व और कर्त्तव्य से संबंधित संस्मरण, गोष्ठियाँ, उपलब्धियाँ निम्न पते पर भेजकर इस सुकृत्य में अपनी सहभागिता अवश्य बनाएँ।

कृपया जानकारी निम्न पते पर भेजने का कष्ट करें।

श्री विद्यासागर शिक्षा समिति, १५३६/५ सिद्धनगर, पुरवा, नागपुर रोड, जबलपुर (म.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चार अनुयोग

ब्र. कु. प्रभा पाटनी (संघस्थ)

तीर्थादाम्नाय निध्याय युक्त्याऽन्तः प्रणिधाय च।
श्रुतं व्यवस्येत् सद्विश्वमनेकान्तात्मकं सुधीः॥ ७॥
(धर्मा., तृ.अ.)

बुद्धिशाली मुमुक्षु को गुरु से श्रुत को ग्रहण करके तथा युक्ति से परीक्षण करके और उसे स्वात्मा में निश्चल-रूप से आरोपित करके अनेकान्तात्मक अर्थात् द्रव्यपर्याय-रूप और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्यात्मक विश्व का निश्चय करना चाहिए।

श्रुतज्ञान प्राप्त करने की यह विधि है कि शास्त्र को गुरुमुख से सुना जाये या पढ़ा जाये। गुरु अर्थात् शास्त्रज्ञ जिसने स्वयं गुरुमुख से शास्त्राध्ययन किया हो। गुरु की सहायता के बिना स्वयं स्वाध्यायपूर्वक प्राप्त किया श्रुतज्ञान कभी-कभी गलत भी हो जाता है। शास्त्रज्ञान प्राप्त करके युक्ति से उसका परीक्षण भी करना चाहिए। कहा भी है कि 'इस लोक में जो युक्तिसम्मत है, वही परमार्थ सत् है। क्योंकि सूर्य की किरणों के समान युक्ति का किसी के भी साथ पक्षपात नहीं है, जैसे सब अनेकान्तात्मक है सत् होने से, और जो सत् नहीं है वह अनेकान्तात्मक नहीं है, जैसे आकाश का फूल। इसके बाद उस श्रुत को अपने अन्तस्तल में उतारना चाहिए। गुरुमुख से पढ़कर और युक्ति से परीक्षण करके भी उस पर अन्तस्तल से श्रद्धा न हुई, तो वह ज्ञान कैसे हितकारी हो सकता है। श्रुतज्ञान का बड़ा महत्त्व है। उसे केवलज्ञान के तुल्य कहा है। समन्तभद्र स्वामी ने आप्त मीमांसा में कहा है-

स्याद्वाद-केवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्यतमं भवेत्॥ १०५॥

स्याद्वाद अर्थात् श्रुतज्ञान और केवलज्ञान दोनों ही सर्व जीवादि तत्त्वों के प्रकाशक हैं। दोनों के भेद प्रत्यक्ष और परोक्ष हैं। जो दोनों में से किसी का भी ज्ञान का विषय नहीं है, वह वस्तु ही नहीं है।

गणधरों ने भगवान् की दिव्य देशना का विभाजन किया, विषयों की तालिका बनी, सात तत्त्व, नव पदार्थ आदि आत्मोपयोगी विषयों का विश्लेषण हुआ। वीतराग प्रभु की वाणी को जनोपयोगी बनाने में अनुपम मेधावी, निर्ग्रन्थ गणधरों का प्रमुख हाथ था। पूजा में भी आया है 'गणधर गूँथे बारह सु अंग' अर्थात् भगवान् की दिव्यवाणी को गुम्फित करने का श्रेय गणधरों को ही था। वाणी द्वादशांग रूप में सीमित हुई, गूँथी गयी और कालक्रम से आचार्य-परम्परा में आयी। वर्तमान में जितना भी शास्त्र साहित्य उपलब्ध है, उसमें राग-द्वेष मोह से रहित, कषायों से रहित वीतरागता का वर्णन है, अनादिकालीन मिथ्यात्व को दूर करनेवाली बन्धन से मुक्त करनेवाली उपदेशात्मक वाणी का वर्णन है।

समस्त प्राणियों की प्रवृत्ति एवं जिज्ञासा अलग-अलग है। किन्हीं प्राणियों को तो संक्षिप्त शैली में समझ आता है, किन्हीं प्राणियों को विस्तार से वर्णन करने पर समझ में आता है। अतः पंचेन्द्रियों में आलिप्त सांसारिक प्राणियों को आत्मोन्मुख किया जाय, यह समस्या पूर्वाचार्यों व सभी धर्माचार्यों के समक्ष रही है। उचित समाधान भी समयानुसार द्रव्य, क्षेत्र, काल आदि को जानकर किया गया।

कथन-प्रणालियाँ जैनसाहित्य में अनुयोगरूप में पायी जाती हैं। श्रुत की वन्दना करते समय **'प्रथमं करणं चरणं द्रव्यं नमः'** यह वाक्य पाया जाता है। इससे इनके क्रम का भी पता चलता है।

तीर्थ और आम्नायपूर्वक श्रुत का अभ्यास करने का उपदेश देते हुए कहा गया है-

श्रुतकेवलबोधश्च विश्वबोधात् समं द्वयम्।
स्यात्परोक्षं श्रुतज्ञानं प्रत्यक्षं केवलं स्फुटम्॥

परमागमरूपी समुद्र से प्राप्त करके भगवज्जिनसेनाचार्य आदि सत्पुरुषरूपी मेघों के द्वारा बरसाये गये प्रथमानुयोग आदि रूप जल को भव्यरूपी चातक बार-बार प्रीतिपूर्वक पान करें। मेघों के द्वारा समुद्र से ग्रहीत जल बरसने पर ही चातक अपनी चिरप्यास को बुझाता है। यहाँ भव्य जीवों को उसी चातक की उपमा दी है, क्योंकि चातक की तरह भव्य जीवों को भी चिरकाल से उपदेशरूप जल नहीं मिला है। परमागम को समुद्र की उपमा दी है और परमागम से उद्धृत प्रथमानुयोग, करुणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानुयोग सम्बन्धी शास्त्रों को जल की उपमा दी है, क्योंकि जल से तृषा दूर होती है। उन शास्त्रों की रचना करनेवाले भगवज्जिनसेनाचार्य आदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आचार्यों को मेघ की उपमा दी है, क्योंकि मेघों की तरह वे भी विश्व का उपकार करते हैं।

प्रथमानुयोग

पुराणं चरितं चार्थाख्यानं बोधिसमाधिदम्।
तत्त्वप्रथार्थी प्रथमानुयोगं प्रथयेत्तराम्॥ ७॥

हेय और उपादेय रूप तत्त्व के प्रकाश का इच्छुक भव्यजीव बोधि और समाधि को देनेवाले तथा परमार्थ सत् वस्तुस्वरूप का कथन करनेवाले पुराण और चरितरूप प्रथमानुयोग को अन्य तीन अनुयोगों से भी अधिक प्रकाश में लायें अर्थात् उनका विशेष अध्ययन करें।

तिरेसठ शलाकापुरुषों (२४ तीर्थंकर, १२ चक्रवर्ती, ९ नारायण, ९ प्रतिनारायण, ९ बलभद्र) की कथा जिस शास्त्र में कही गयी हो उसे पुराण कहते हैं। उसमें आठ बातों का वर्णन होता है। कहा है- लोक, देश, नगर, राज्य, तीर्थ, दान तथा अन्तरंग और बाह्य तप से आठ बातें पुराण में होती हैं।

ब्रह्मवैवर्त पुराण में कहा है-'जिसमें सर्ग-कारणसृष्टि, प्रतिसर्ग-कार्यसृष्टि, वंश, मन्वन्तर और वंशों के चरित हों उसे पुराण कहते हैं।' पुराण के पाँच लक्षण हैं। जिसमें एक पुरुष की कथा होती है उसे चरित्र कहते हैं। पुराण और चरित विषयक शास्त्र प्रथमानुयोग में आते हैं। प्रथम नाम देने से ही इसका अर्थ स्पष्ट है। अन्य अनुयोगों में जो सिद्धान्त आचार आदि वर्णित हैं, उन सबके प्रयोगात्मक रूप से दृष्टान्त प्रथमानुयोग में ही मिलते हैं। इसलिए इसके अध्ययन की विशेष रूप से प्रेरणा की है। इसके अध्ययन से हेय क्या है और उपादेय क्या है, इसका सम्यक् रीति से बोध होता है, साथ ही बोधि और समाधि की भी प्राप्ति होती है। बोधि का अर्थ है- अप्राप्त सम्यग्दर्शन आदि की प्राप्ति। और प्राप्त होने पर उन्हें उनकी चरम सीमा तक पहुँचाना समाधि है अथवा समाधि का अर्थ है धर्म्यध्यान और शुक्लध्यान।

करणानुयोग

चतुर्गति युगावर्त लोकालोक-विभागवित्।
हृदि प्रणेयः करणानुयोगः करणातिगैः॥ १०॥
(अ.धर्मा.)

नारक, तिर्यंच, मनुष्य, देवरूप चार गतियों, युग अर्थात् सुषमा-सुषमा आदि काल के विभागों का परिवर्तन तथा लोक और अलोक का विभाग जिसमें वर्णित है उस करणानुयोग को हृदय में धारण करना चाहिए।

करणानुयोग सम्बन्धी शास्त्रों में चार गति आदि का वर्णन होता है। नरकादि गति नामकर्म के उदय से होनेवाली जीव की पर्याय को गति कहते हैं। उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी कालों के परिवर्तन को युगावर्त कहते हैं। जिसमें जीव आदि छहों पदार्थ देखे जाते हैं, उसे लोक कहते हैं। अर्थात् तीन सौ तैंतालीस राजु प्रमाण आकाश का प्रदेश लोक है। उसके चारों ओर अनन्तानन्त प्रमाण केवल आकाश अलोक है। इन सबका वर्णन करणानुयोग में होता है। लोकानुयोग, लोक-विभाग, पंचसंग्रह आदि ग्रन्थ उसी अनुयोग के अन्तर्गत हैं।

चरणानुयोग

सकलेतरचारित्र जन्म-रक्षाविवृद्धिकृत्।
विचारणीयश्चरणानुयोगश्चरणादृतैः॥ ११॥
(अ.धर्मा.)

चारित्रपालन के लिए तत्पर पुरुषों को सकलचारित्र और विकलचारित्र की उत्पत्ति, रक्षा और विशिष्ट वृद्धि को करनेवाले चरणानुयोग का चिन्तन करना चाहिए। हिंसा आदि के साथ रागद्वेष की निवृत्ति को चारित्र कहते हैं। उसके दो भेद हैं- सकलचारित्र और विकलचारित्र। इन चारित्रों को कैसे धारण करना चाहिए, धारण करके कैसे उन्हें अतिचारों से बचाना चाहिए और फिर कैसे उन्हें बढ़ाना चाहिए- इन सबके लिए आचारांग, उपासकाध्ययन आदि चरणानुयोग सम्बन्धी शास्त्रों को पढ़ना आवश्यक है।

द्रव्यानुयोग

जीवाजीवौ बन्धमोक्षौ पुण्यपापे च वेदितुम्।
द्रव्यानुयोगसमयं समयन्तु महाधियः॥ अ.धर्मा.॥

तीक्ष्ण बुद्धिशाली पुरुषों को जीव-अजीव, बन्ध-मोक्ष और पुण्य-पाप का निश्चय करने के लिए सिद्धान्त-सूत्र, तत्त्वार्थ-सूत्र, पंचास्तिकाय आदि द्रव्यानुयोग-विषयक शास्त्रों को सम्यक् रीति से जानना चाहिए।

इस प्रकार चारों अनुयोगों में संग्रहीत जिनागम की उपासना का फल बताते हुए आचार्य कहते हैं कि जिनागम पूर्वापर विरोध आदि दोषों से रहित होने से अमल है।

लोक-अलोकवर्ती पदार्थों का कथन करनेवाला होने से विपुल है, सूक्ष्म अर्थ का दर्शक होने से निपुण है, अर्थतः अवगाढ़-ठोस होने से निकाचित है। सबका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हितकारी है, परम उत्कृष्ट है और पाप का हर्ता है। ऐसे जिनागम की जो सदा अच्छी रीति से उपासना करता है उसे सात गुणों की प्राप्ति होती है–

१. त्रिकालवर्ती अनन्त द्रव्यपर्यायों के स्वरूप का ज्ञान होता है।
२. हित की प्राप्ति, अहित के परिहार का ज्ञान होता है।
३. मिथ्यात्व आदि से होनेवाले आस्रव का निरोधरूप भावसंवर होता है अर्थात् शुद्ध स्वात्मानुभूतिरूप परिणाम होता है।
४. प्रति समय संसार से नये-नये प्रकार की भीरुता होती है।
५. व्यवहार और निश्चयरूप रत्नत्रय में अवस्थिति होती है।
६. रागादि का निग्रह करनेवाले उपायों में भावना होती है।
७. पर को उपदेश देने की योग्यता प्राप्त होती है।

'वात्सल्यरत्नाकर' (द्वितीय खण्ड) से साभार

डॉ० सुरेन्द्र जैन भारती (सहयोगी सम्पादक : 'जिनभाषित') की मातृश्री का निधन

डॉ० सुरेन्द्र जैन 'भारती' (सहयोगी सम्पादक 'जिनभाषित') की पूजनीया मातृश्री (धर्मपत्नी श्री सिंघई शिखरचन्द्र जैन सोंरया) का स्वर्गवास दिनांक 10.12.08 बुधवार को दोपहर 1 बजे हो गया है। आप डॉ० रमेशचन्द्र जैन (बिजनौर), डॉ० अशोककुमार जैन (वाराणसी), डॉ० नरेन्द्रकुमार जैन (सनावद) एवं श्री वीरेन्द्रकुमार जैन (मड़ावरा) की भी माता थीं। 'जिनभाषित'–परिवार अपनी शोक-समवेदना प्रेषित करता है।

रतनचन्द्र जैन

समाधि तंत्र-अनुशीलन संगोष्ठी सम्पन्न

टोड़ी-फतेहपुर (झाँसी, उ.प्र.) दि. 26 से 28 दिसम्बर 2008 तक श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र टोड़ी फतेहपुर में आचार्य श्री विशुद्ध सागर जी के ससंघ मंगल सान्निध्य एवं डॉ० श्री श्रेयांस कुमार जी जैन बड़ौत व डॉ० सुदीप जैन दिल्ली के संयोजकत्व में आचार्य श्री पूज्यपाद स्वामी विरचित आध्यात्मिक कृति 'समाधितंत्र व इष्टोपदेश अनुशीलन' कृति पर प्रथम संगोष्ठी, क्षेत्र पर प्रथम बार एवं आचार्य श्री के ससंघ सान्निध्य में भी प्रथम बार सम्पन्न हुई। देश के करीब 30 मूर्धन्य विद्वानों ने भाग लिया, जिनमें डॉ० जयकुमार जी मु० नगर, डॉ० कमलेश जी वाराणसी एवं जयपुर, डॉ० फूलचंद्र जी प्रेमी वाराणसी, डॉ० शीतलचंद जी जयपुर, डॉ० वृषभप्रसाद जी लखनऊ, पं० पवन दीवान मोरेना, डॉ० नलिन के जैन, डॉ० विजय जैन एवं डॉ० श्रीमती राका जैन लखनऊ, पं० श्री लालचंद जी राकेश-गंजबासौदा, प्राचार्य निहालचंद जी बीना, डॉ० अशोक जैन वाराणसी, पं० सनत कुमार, विनोद कुमार रजवाँस, पं० सुनील संचय, पं० पंकज जैन, पं० अशीष शास्त्री, पं० वीरेन्द्र जी बिलासपुर, पं० छोटेलाल जी झाँसी आदि प्रमुख रूप से उपस्थित रहे।

इसी अवसर पर श्री सेठी जी व डॉ० जयकुमार जी मु. नगर के कर कमलों से श्री दीवान जी की बहुचर्चित उपयोगी कृति **'तीर्थक्षेत्र पर्वादि वंदनाष्टक शतक पूर्वार्द्ध'** का भी भव्य लोकार्पण सम्पन्न हुआ।

भवदीय
पं० पवन कुमार शास्त्री 'दीवान'

डॉ० सुशील, सौरभ जैन नए निवास में

मैनपुरी, शास्त्री परिषद् के उपाध्यक्ष, वाग्भारती पुरस्कार के स्थापक, प्रसिद्ध विद्वान् डॉ० सुशील जैन, डॉ० सौरभ जैन ने २४ नवम्बर २००८ को अपने नये भवन 'सर्वतोभद्र' 6/81 आवास विकास, कचहरी रोड में गृह प्रवेश किया।

इस उपलक्ष्य में 11000/- की दान की भी घोषणा की गई जो विभिन्न तीर्थों व पत्र पत्रिकाओं को प्रेषित की गई जिसमें से रूपये 100 की राशि 'जिनभाषित' को भी प्राप्त हुई है। धन्यवाद।

डॉ० सुशील जैन का पत्र व्यवहार का पता पूर्व की भाँति ही रहेगा।

डॉ० स्वाती जैन
जैन नर्सिंग होम
सिटी पोस्ट ऑफिस के सामने
मैनपुरी (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वृद्धावस्था जीवन का फाइनल-एक्जामीनेशन

पं० बसन्त कुमार जैन शास्त्री, शिवाड़

जीवन एक परीक्षा-पत्र (पेपर) होता है। इसे हल करने के लिए तीन घण्टे-बचपन, युवा और वृद्धावस्था मिलते हैं। हम यों भी कह सकते हैं कि जीवन एक पूरी आयु की अध्ययनशाला है। जिसकी परीक्षा प्रथम टेस्ट, द्वितीय हाफइयरली (माध्यमिक) और तृतीय फाइनल (वृद्धावस्था) रूप में होती है।

प्रथम टेस्ट में आचरण का निर्माण हुआ करता है, हाफइयरली एक्जामीनेशन में आचरण का आचरण किया जाता है, और फाइनल में आचरण का आस्वादन किया जाता है। पूरे जीवन की सफलता और असफलता इसी एक्जामीनेशन से मिलती है।

वृद्धावस्था से पूर्व के जीवन में परिवार-संचय, धन-संचय, वस्तु-संचय, प्रतिष्ठा-संचय, ज्ञान-संचय, आदि में व्यतीत होता है। यह भी मेरा, वह भी मेरा, मैं इसका, मेरे, इसके के राग-द्वेष, मोह, माया, लोभ-प्रलोभन में रचा-पचा रहता है। इस समय जोश तो रहता है, किन्तु होश नहीं रहता।

अपनी, अपने परिवार, अपने देश, अपने समाज, अपने सम्प्रदाय, अपने समूह की विजय, सफलता, उन्नति आदि के नारे लगाता है, जुलूस महोत्सव आदि की योजना करता है और यो जोश के खरोश में चलते-चलते फाइनल स्टेज (वृद्धावस्था) पर कदम रख देता है।

जो संरचना इसने यहाँ तक पहुँचने से पूर्व की थी, आज उसका आस्वादन लेना चाहता है, क्योंकि यहाँ आते-आते शरीर थक जाता है, जोश ठण्डा हो जाता है, इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और जिनकी संरचना की थी अब वे जवान हो जाती हैं, ध्वस्त हो जाती हैं।

तब इसकी अवहेलना सी होने लगती है, इसके पुरुषार्थ को लोग, परिवार, परिजन भूलने लग जाते हैं और इसके कार्यों पर अपनी मोहर लगाने लग जाते हैं।

इस अवस्था में एक अकेला पड़ जाता है, इसकी सारी सेवाएँ धूमिल पड़ने लग जाती हैं। बेटे, बहुएँ, पोते-पोती सब कन्नी काटने लग जाते हैं- खाने-पीने की लालसा तो रहती है, पर खाया-पिया नहीं जाता, आये दिन वी.पी., कफ, खाँसी, घुटनों, कमर का दर्द, आदि सताते रहते हैं। और यह कुछ भी नहीं कर पाता।

बस यहीं से तो फाइनल-एक्जामीनेशन प्रारम्भ हो जाता है। सहनशीलता, धैर्य, धर्मध्यान, एकान्तता, चिन्तन, मनन, सरलता, शान्ति, संयम आदि इस एक्जामीनेशन के सब्जेक्ट होते हैं इसी को हल करना होता है। इस अवस्था में परिवार परिजन से अनासक्ति, धन दौलत से निर्वृत्ति अपने आपसे समझौता, आत्मा से परमात्मा बनने की कला, और उस समय की प्रतीक्षा बनी रहती है, जब पीरियड समाप्त होनेवाला है।

अब इस फाइनल-एक्जामीनेशन में पास होना है या फेल, इसी के हाथ में रहता है। यहाँ किसी की नकल भी नहीं चलती। अपना ज्ञान, अपना अनुभव, अपना चिन्तन, अपना मनन, अपनी ही सूझबूझ काम में आती है। और जीवन के इस एक्जामीनेशन में पास होनेवाला जीवन के एक्जामीनेशन-हाल में बैठा सोचता है।

"देख लिया परिवार-परिजन का मोह, देख लिया इनका स्वार्थ भरा प्रेम, देख लिया इनका सेवाभाव, खूब पसीना बहाया है, मैंने इनको सम्पन्न बनाने के लिए। न्याय-अन्याय, धर्म-अधर्म, नीति-अनिति, सदाचार-कदाचार, भक्ष्य-अभक्ष्य, रात-दिन, भूख-प्यास सबको भूलकर- रचा-पचा रहा अब तक .... कौन जायेगा इनमें से मेरे साथ? मेरी इस जर्जर अवस्था में कौन देगा सहारा? सब अपने-अपने काम में व्यस्त हैं, किस को है परवाह मेरी? इन सबकी सुध लेते-लेते मैं अपनी ही सुध भूल गया था। अब तो मुझे अपनी सुध लेनी चाहिए। एकान्त मिल गया, भीड़ भरे माहौल से छुट्टी मिल गई, खाने कमाने की चिन्ता नहीं रही, शान्त मन से सरल परिणाम रख कर उन तत्त्वों का अब चिन्तन, मनन कर लेना चाहिए, जिनकी परिभाषाएँ सीखी थीं। अब तो मुझे किसी पर भी आक्रोश, चिड़चिड़ाहट नहीं करना चाहिए। अरे जब यह शरीर ही मेरा साथ छोड़ रहा है, तो शरीर से दूर रहनेवाले कैसे साथ दे सकते हैं? सब नदी-नाव के संयोग जैसे, सब एक ट्रेन के मुसाफिर जैसे, सब एक धर्मशाला में रहनेवाले जैसे, सब रात को एक पेड़ पर एकत्रित हो जानेवाले पक्षियों जैसे, सब पूर्वभवी संयोग जैसे हैं, जिनसे विलग होना ही है। तत्त्व-कुतत्त्व,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुख-दुःख, अपना-पराया, अच्छाई-बुराई, मन की दौड़, तन की होड़, सबका अनुभव हो गया। हे मन! अब अपने आपको सँम्भाल। अन्तिम क्षणों में याद कर ले अपने आतम राम को। वैभाविक परणति छोड़कर आ जा स्वभाविक परणति में।'' इस तरह चिन्तन करके शान्त मन से इस फाइनल एक्जामीनेशन में उत्तीर्णता प्राप्त की जा सकती है।

यह परीक्षा कोई गृहस्थावस्था में रहकर, तो कोई सन्त-अवस्था में रहकर देता है। सबका सब्जेक्ट परीक्षा में उत्तीर्ण होने जैसा ही होता है। इस प्रकार के शान्त मन से अनासक्त पूर्वक चिन्तन करने से स्वतः ही समाधि मरण हो जाता है, जो इस पर्याय की सम्पूर्ण सफलता का प्रतीक है।

हमारे नौनिहालों को बीमार करते खिलौने

डॉ० ज्योति जैन

हम सब आगे बस आगे बढ़ने की होड़ में लगे हैं। इस होड़ से उपजी त्रासदियाँ भी हम सबको ही झेलनी पडेंगी। जी हाँ! हम अपने प्यारे बच्चों को, जिगर के टुकड़ों को, अपने लाड़ले को आधुनिकता की चमक-दमक लिये लेटेस्ट खिलौने की जो रेंज दे रहे हैं, क्या वह हमारे बच्चों को ठीक है? क्या वे उनकी सेहत पर कोई गलत असर तो नहीं डाल रहे हैं? माता-पिता व अन्य पारिवारिक-जन इस विषय पर अवश्य ध्यान दें।

छोटे बड़े सभी बच्चों को खिलौनों से बड़ा प्यार होता है। उनकी दुनिया ही खिलौनों में बसती है। आज का बाजार बच्चों के विभिन्न खिलौनों से अटा पड़ा है। रोज तरह-तरह के आकर्षक खिलौने देखने मे आ रहे हैं। हम सब भी बच्चों को खिलौने खरीदते रहते हैं। पर ध्यान रखें, सचेत रहें कि हम जो खिलौना खरीद रहे हैं या किसी बच्चे को गिफ्ट में दे रहे हैं, उसके कलर उसकी गुणवत्ता कहीं बच्चे को या हमारी इस पीढ़ी को बीमार तो नहीं बना रही है?

पर्यावरण पर नजर रखनेवाले एक संगठन 'टॉक्सिकलिक' ने अपने शोध के आधार पर खुलासा किया है कि आकर्षक दिखनेवाले, चमक-दमक लिये ये आधुनिक खिलौने अनेक समस्याएँ पैदा कर रहे हैं। एक सर्वे के बाद संगठन ने पाया कि **'पोली विनाइल क्लोराइड यानी पी.वी.सी. या साफ्ट खिलौनों से खेल-खेल में सीसा और केडमियम जैसे घातक तत्त्व बच्चों के शरीर में पहुँच रहे हैं।** अक्सर छोटे बच्चे खिलौने मुँह में डालते हैं, जिससे ये रसायन शरीर को नुकसान पहुँचाते हैं, यदि लम्बे समय तक शरीर में इनका असर रहे तो यकृत-कैंसर, गुर्दे में खराबी, स्मरणशक्ति में कमी तथा अनेक मानसिक रोग घर कर लेते हैं। ये लक्षण तुरंत प्रकट न भी हों, पर जब असर दिखाते हैं, तो घातक सिद्ध होते हैं।

खिलौनों को आकर्षक एवं नैचुरल बनाने में जिस तरह से सीसा, कैडमियम और अन्य घातक एवं नुकसानदेह रसायनों का इस्तेमाल होता है, वह उपभोक्ता सुरक्षा आयोग के मानकों के हिसाब से सुरक्षित नहीं है। मुश्किल तो यह है कि हमारे देश में नुकसानदेह धातुओं (रसायनों) के इस्तेमाल को लेकर कोई सख्त मानक तय नहीं है।

यह भी एक विडम्बना ही है कि आज हमारा बाजार सस्ते चीनी खिलौनों से अटा पड़ा है। सस्ते एवं आकर्षक होने के कारण लोकप्रिय भी हैं। चीन पूरे विश्व में सबसे सस्ते खिलौने का सबसे बड़ा निर्यातक देश है। विश्व खिलौने बाजार में उसकी हिस्सेदारी लगभग सत्तर फीसदी है। चीन के ही गुणवत्ता अधिकारियों ने यह खुलासा किया कि सस्ते बनाने के चक्कर में अनेक कम्पनियाँ मापदण्डों पर सही नहीं हैं और औद्योगिक कचरे आदि से ये सस्ते खिलौने बनाये जा रहे हैं। इन खिलौनों के दुष्प्रभाव को देखते हुए अमेरिका के उत्पाद सुरक्षा आयोग, यूरोपीय संघ, स्पेन, डेनमार्क आदि देशों ने इन पर पाबंदी लगा दी है। हमारे यहाँ अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान के डाक्टर अनूप सराया ने भी इन खिलौनों को स्वास्थ्य की दृष्टि से खतरनाक बताया है।

हमारे यहाँ अनेक कम्पनियाँ हैं, जो छोटे बच्चों के विशेष खिलौने निकालती हैं। नये युग के नये खिलौनों की चाहत तो हर बच्चे में है ही, परंतु अभिभावक खिलौनों में भी अपना स्टेटस ढूँढ़ने लगे हैं। इसी मनोवृत्ति ने हमारे पारम्परिक और देशी खिलौनों को नुकसान पहुँचाया है। अंत में बच्चों को ऐसे खिलौने न दें, जो उनके स्वास्थ्य को नुकसान पहुँचायें।

शिक्षक आवास 6, डिग्री कॉलेज कैम्पस
खतौली - 251201 (उ.प्र.)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कोशिश करने पर लंदन में भगवान् का मंदिर मिल ही गया।

निर्मलकुमार पाटोदी

हम पति-पत्नी (श्रीमती इन्द्रा पाटोदी) सोमवार २ जून से मंगलवार २४ जून २००८ तक यूरोप के ९ देश व दुबई पर्यटन यात्रा पर गये थे। यात्रा पर जाने से पूर्व ज्ञात हो गया था कि लन्दन के हैरो ऑन द हिल इलाके में जैनमंदिर है। स्वभाविक ही विदेश में पहली बार भगवान् के दर्शन करने की भावना प्रबल थी। लंदन के इयूस्टन क्षेत्र की होटल में ठहरना हुआ था। लंदन के भू-गर्भ में तीव्रगति से दौड़नेवाली ट्यूब रेल से हैरो ऑन द हिल स्टेशन पर उतर गये। यहाँ से मंदिर तक कैसे पहुँचे, यह समस्या सामने आ गई तीन-चार भारतीय लोगों को रोककर पूछा, सभी जैनमंदिर के नाम-पते से अनभिज्ञ थे। तब किसी भारतीय ने सुझाया टिकिट खिड़की के बाबू गुजराती हैं, शायद वे बता पावेंगे। पहले तो वे भी कुछ बता नहीं सके, फिर कुछ सोचकर बोले-पड़ोस में टिकट चेकर हैं- उनसे मिल लीजिये। टिकट चेकर अपने कक्ष के सामने स्थित कार्यालय में गये। कम्प्यूटर पर मंदिर संबंधी जानकारी तलाशी। उन्हें भी निराशा ही हाथ लगी। इसके बाद उन्होंने टेलिफोन डॉयरेक्टरी में खोजबीन की। इतने प्रयास के बाद सुफल निकला। हैरो ऑन द हिल इलाके में जैनमंदिर है, तत्संबंधी इतना पता चल गया। एक पर्ची पर मंदिर क्षेत्र का पता लिख कर दे दिया। बताया कि रेल्वे स्टेशन से लगे बायें भाग में सिटी बस स्टैन्ड पर बस नं. १४० या १८२ से उस इलाके में उतर जाएँ। पूछताछ करके जैन-मंदिर तक पहुँच जाओगे। बताये गये वस स्टॉप पर उतर गये और पूछते-तलाशते प्रात: १० बजे के लगभग दिगम्बर जैनमंदिर तक पहुँचने में सफल हो गये।

बाहर सड़क से ही मंदिर के पाँच शिखर और मान-स्तंभ को देखकर मन प्रफुल्लित हो गया। बाहर का प्रवेश द्वार बन्द था। मंदिर में प्रवेश करने की नयी समस्या उपस्थित हो गयी। इलेक्ट्रॉनिक ताला लगा था। साथ में लगी घण्टी दिखी, तो उसका बटन दबाया। अन्दर से एक वृद्ध सज्जन ने दरवाजा खोला। जय जिनेन्द्र के साथ भावनाएँ व्यक्त कीं। उन्हें बताया इण्डिया से आये हैं, दर्शन करना चाहते हैं। तत्काल वे हमें बायें द्वार से मंदिर में ले गये। गर्भगृह में प्रवेश करते ही भगवान् महावीर स्वामी की पद्मासन सफेद पाषाण की एकदम बेदाग लगभग ४ फुट ऊँची चित्ताकर्षक प्रतिमा पर सीधा ध्यान गया, देखते ही मन को शांति मिली और भगवान् के दर्शन किये। महावीर भगवान् की इस प्रतिमाजी के आगे की ओर छोटी-छोटी चॉकलेटी रंग की पाषाण की चार पद्मासन तथा दायीं तथा बायीं ओर स्थित स्तंभ में दो और पाषाण की प्रतिमाएँ विराजमान थीं। दीवार में बने पाँच आलों में एक-एक जिनवाणी विराजमान थी। वेदीजी के अग्रभाग में आचार्य भगवंत कुंदकुंद स्वामीजी का चित्र लगा हुआ था। प्रतिमाजी के सामने के खुले भाग में ५० फुट लम्बा और ३० फुट चौड़ा स्वाध्याय सभागृह था। जिसमें बायीं ओर की दीवार पर सुप्रसिद्ध धर्मात्मा राजचन्द्रजी का फोटो टँगा हुआ था। प्रतिमाजी चित्र, स्वाध्याय सभागृह तथा शिखर आदि के चित्र उतार लिये।

दर्शन के बाद देखा सभागृह में सभी आयु समूह की महिलाएँ एक ओर तथा पुरुष दूसरी ओर सुन्दर बिछात, कारपेट, कुर्सियों पर सुविधानुसार बैठे हैं। उनके हाथ में समयसार (गुजराती) था। वे टेप पर चल रहे कहानजी स्वामी के प्रवचन का श्रवण कर रहे थे। एकदम शांत वातावरण था। पूरे एक घण्टा प्रात: ९.३० से १०.३० बजे तक कहानजी स्वामी का टेप पर प्रवचन चलता रहा। इस अवधि में मैं भी हिन्दी समयसार का वाचन करता रहा। इसके बाद १०.३० से ११.३० बजे तक समाज के एक विद्वजन का स्वाध्याय प्रारंभ हुआ। इसी के साथ में प्रश्नोत्तर भी चलता-रहता है। मंदिर के प्रथम तल पर एक और बड़ा सभागृह है। मंदिर में भगवान् का प्रक्षाल करने के लिये शुद्ध धुले वस्त्र बदलने का स्थान अलग से है। अन्य सभी आवश्यक सुविधाएँ भी हैं। मंदिर प्रात: ११.३० बजे तक दर्शन के लिये खुला रहता है। जिन साधर्मी श्रद्धालु से प्रथम परिचय हुआ था वे गुजराती हैं। ३० साल तक नैराबी में रहे हैं और १५-१७ साल से पुत्र के साथ लंदन में हैं। उन्होंने बताया कि यहाँ जितने भी जैनपरिवार हैं, वे सभी गुजराती हैं। पहले हम श्वेताम्बर थे। कहानजी स्वामी के साथ दिगम्बर धर्मावलम्बी हो गये। ईसाई राज्य होने से मंदिर बनाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

में बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। भगवान् की प्रतिमाएँ व अन्य कलात्मक निर्माण कार्य जयपुर से कराकर यहाँ बुलवाया गया है। तीन साल पहले प्रतिष्ठा हुई है। हम सब एकसाथ नियमित धर्म-ध्यान, स्वाध्याय करते हैं। भोजन संबंधी सभी सामान घर का बना हुआ खाते हैं। रेस्टोरेन्ट या अन्यत्र कुछ भी नहीं खाते हैं। पर्युषण पर्व पर भारत से पण्डितजी/विद्वान् को आमंत्रित करते हैं।

दूसरे दिन भी पुनः मंदिर जी में भगवान् के दर्शन करने की इच्छा को फिर पूर्ण किया।

२२, जॉय बिल्डर्स कॉलोनी
(रानीसती गेट के अंदर) इन्दौर (म.प्र.)
लंदन के मंदिरजी का पता-
Shri Mahavir Swami Jain Temple The Broad Way, Wealdstone, Harrow, Middlesex, HA3, 7EH, London. U.K.
E-mail.digamberjain.london@yahoo.co.uk
Contact Address-
46, Bideford Avenue, Perivale, Middlesex UB6 7QB. U.K.
Tel.-+44(20) 85667100]
Fax - +44 (20) 85667200

आचार्य विशुद्धसागर जी के सान्निध्य में टोड़ी फतेहपुर में पंचकल्याण-प्रतिष्ठा एवं त्रिगजरथ-महोत्सव

ललितपुर। परम पूज्य अध्यात्म योगी आचार्य श्री १०८ विशुद्धसागर जी महाराज ससंघ के मंगल सान्निध्य मे सुप्रसिद्ध चामत्कारिक अतिशय तीर्थक्षेत्र टोड़ी फतेहपुर (झाँसी) में २७ जनवरी २००९ से ०२ फरवरी २००९ तक श्री मज्जिनेन्द्र-पंचकल्याणक-प्रतिष्ठा एवं त्रिगजरथ-महोत्सव का आयोजन किया जा रहा है। जिसमें लाखों श्रद्धालुओं के पहुँचने की संभावना है। आयोजन की तैयारियाँ युद्धस्तर पर चल रही हैं। आचार्य श्री विशुद्धसागर जी महाराज अपने पूरे संघ के साथ टोड़ी फतेहपुर पहुँच चुके हैं।

चामत्कारिक घटनाएँ होने से यह तीर्थ श्रद्धालुओं को अपनी ओर बरबस ही खींच लेता है। अनेक लोगों की मनोकामनाएँ पूर्ण होते हुए यहाँ साक्षात् देखी जा सकती हैं। ऐसे में यहाँ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव का आयोजन देखने योग्य होगा।

मध्यप्रदेश विधानसभा चुनाव में जैन-प्रत्याशियों की जीत पर हर्ष

नरवाँ (सागर) मध्यप्रदेश विधानसभा चुनाव की ८ दिसम्बर २००८ को हुई मतगणना में अनेक जैनप्रत्याशी भी निर्वाचित हुये हैं। प्राप्त सूचना के अनुसार सागर से श्री शैलेन्द्र जैन, जबलपुर से श्री शरद जैन, कोलारस से श्री देवेन्द्र जैन, विदिशा से श्री राघव जी भाई, दमोह से श्री जयंत मलैया, रतलाम से श्री पारस जैन, श्री ओमप्रकाश सखलेचा जैन प्रत्याशी निर्वाचित हुए हैं। धर्मप्रभावना जनकल्याण परिषद् ने सभी विजयी विधायकों को हार्दिक बधाई दी है। उक्त सभी विधायक भाजपा से निर्वाचित हुये हैं।

श्रुत-सेवा-यंग-अवार्ड-२००८ श्री आशीष शास्त्री को

शाहगढ़ (सागर)। धर्म-प्रभावना जनकल्याण परिषद् द्वारा युवा-विद्वानों के प्रोत्साहन हेतु स्थापित श्रुत सेवा-यंग-अवार्ड का समर्पण-समारोह एवं अधिवेशन परम पूज्य आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य परम पूज्य मुनि श्री अजितसागर जी महाराज एवं एलक श्री विवेकानंद सागर जी महाराज के सान्निध्य में ९ दिसम्बर २००८ को दोपहर ३.०० बजे से समारोह पूर्वक आयोजित किया गया। वर्ष २००८ के लिए यह पुरस्कार युवा विद्वान् श्री आशीष शास्त्री शाहगढ़ को प्रदान किया गया।

सुनील जैन 'संचय' शास्त्री

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिज्ञासा-समाधान

पं० रतनलाल बैनाड़ा

प्रश्नकर्त्ता– श्रीमती पुष्पा बैनाड़ा आगरा।

जिज्ञासा– मुनिराज खड़े होकर ही भोजन क्यों करते हैं, तथा भोजन करते समय पैरों की स्थिति कैसी रहनी चाहिए, बतायें?

समाधान– दिगम्बर साधु के आहार के सम्बन्ध में श्री मूलाचार ग्रन्थराज में इसप्रकार कहा है-

अंजलिपुडेण ठिच्चा कुड्डाइ विवज्जणेण समपायं।
पडिसुद्धे भूमितिए असणं ठिदि भोयणं णाम॥ ३४॥

अर्थ– दीवाल आदि का सहारा न लेकर जीव-जन्तु से रहित तीन स्थान की भूमि में समान पैर रखकर खड़े होकर दोनों हाथों की अंजली बनाकर भोजन करना स्थिति-भोजन नाम का व्रत है।

इसकी आचारवृत्ति में कहा है कि दीवाल का भाग या खंभे आदि का सहारा न लेकर **पैरों में चार अंगुल प्रमाण का अन्तर** रखकर खड़े होकर अपने कर पात्र **में** आहार लेना स्थितिभोजन है।

प्रश्न– किसलिए स्थिति भोजन का अनुष्ठान किया जाता है?

उत्तर– यह दोष नहीं है, क्योंकि **जब तक मेरे हाथ-पैर चलते हैं, तब तक ही आहार ग्रहण करना योग्य है, अन्यथा नहीं,** ऐसा सूचित करने के लिए मुनि खड़े होकर आहार ग्रहण करते हैं। बैठकर दोनों हाथों से या वर्तन में लेकर या अन्य के हाथ से मैं भोजन नहीं करूँगा, ऐसी प्रतिज्ञा के लिए भी, खड़े होकर आहार करते हैं। दूसरी बात यह भी है कि **अपना पाणिपात्र शुद्ध रहता है तथा अन्तराय होने पर बहुत सा भोजन छोड़ना नहीं पड़ता है,** अन्यथा थाली में खाते समय अन्तराय हो जाने पर, भोजन से भरी हुई पूरी थाली को छोड़ना पड़ेगा, इससे दोष लगेगा। तथा इन्द्रियसंयम और प्राणिसंयम का परिपालन करने के लिए भी स्थिति-भोजन मूलगुण कहा गया है।

यशस्तिलकचम्पूगत उपासकाध्ययन में इस प्रकार कहा है-

न स्वर्गाय स्थितेर्भुक्तिर्न श्वभ्रायास्थितेः पुनः।
किं तु संयमिलोकेऽस्मिन्सा प्रतिज्ञार्थमिष्यते॥ १३३॥
पाणिपात्रं मिलत्येतच्छक्तिश्च स्थितिभोजने।
यावत्तावदहं भुञ्जेहाम्याहारमन्यथा ॥ १३४॥

अर्थ- बैठकर भोजन करने से स्वर्ग नहीं मिलता और न खड़े होकर भोजन करने पर नरक में जाना पड़ता है। किन्तु मुनिजन प्रतिज्ञा के निर्वाह के लिए ही खड़े होकर भोजन करते हैं। मुनि भोजन प्रारम्भ करने से पूर्व यह प्रतिज्ञा करते हैं कि- 'जब तक मेरे दोनों हाथ मिले हैं और मेरे खड़े होकर भोजन करने की शक्ति है, तब तक मैं भोजन करूँगा, अन्यथा आहार को छोड़ दूँगा। इसी प्रतिज्ञा के निर्वाह के लिए मुनि खड़े होकर भोजन करते हैं'॥ १३३-१३४॥

श्री श्रावकाचार-सारोद्धार ग्रन्थ में भी इस प्रकार कहा है- 'ज्ञान नेत्रवाले संयमीजनों की यह प्रतिज्ञा होती है कि जब तक मेरे दोनों हाथ परस्पर मिले हुए रहें और जब तक खड़े होकर भोजन करने की सामर्थ्य है, तब तक ही मैं भोजन की क्रिया करूँगा, अन्यथा सामर्थ्य के अभाव में परलोक की सिद्धि के लिए मैं भोजन की क्रिया को छोड़ दूँगा। ॥ ३१२-३१३॥

विशेष- वर्तमान में कुछ दिगम्बर साधु, दोनों पैरों के बीच चार अंगुल से अधिक अन्तर रखकर आहार करते हुए देखे जाते हैं। इस प्रकार आहार करना उपर्युक्त श्री मूलाचार के कथनानुसार उचित नहीं है।

प्रश्नकर्त्ता– श्रीमती चमेलीदेवी, सागर।

जिज्ञासा– मैं अपने पुत्र के साथ रहती हूँ। मैंने पूज्य आचार्यश्री से पाँच प्रतिमा ले रखी हैं। मेरे पुत्र का ट्रांसफर ऐसे स्थान पर हो गया है, जहाँ न तो मंदिर है और न कुँआ। अब मुझे क्या करना चाहिए?

समाधान– आपने पूज्य आचार्यश्री से जो प्रतिमा के व्रत ग्रहण किए हैं, उनका उसी रूप में पालन करना आपका कर्त्तव्य हो जाता है। श्री धर्मसंग्रहश्रावकाचार में इस प्रकार कहा है-

व्रतभङ्गोऽथवा यत्र देशे न जिनशासनम्॥
क्वचित्तत्र न गन्तव्यं तदपीदं व्रतं भवेत्॥ ३८॥
यत्र देशे जिनावासः सदाचारा उपासकाः।
भूरिवारीन्धनं तत्र स्थातव्यं व्रतधारिणा॥ ४०॥

अर्थ– जहाँ अपना व्रतभङ्ग होता हो तथा जिस देश में जिनधर्म न हो, उस देश में कभी नहीं जाना चाहिए। इसे भी देशावकाशिक शिक्षाव्रत कहते हैं॥ ३८॥ जिस देश में जिनालय हो, उत्तम आचरण के धारक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रावक हों, तथा जल एवं ईंधन की जहाँ प्रचुरता हो, उसी देश में व्रती पुरुषों को रहना चाहिए॥ ४०॥

उपर्युक्त शास्त्राज्ञा के अनुसार आप यदि लिखे अनुसार स्थान पर जाती हैं, तो आपका व्रत कैसे रह पायेगा? आपको या तो जहाँ अभी रह रहीं हैं, वहाँ ही रहना चाहिए अथवा किसी महिलाश्रम में रहना उचित है। ली हुई प्रतिज्ञा को भंग करने में तो महान् दोष है। धर्मसंग्रहश्रावकाचार में कहा है-

धार्मिकः प्राणनाशेऽपि व्रतभङ्गं करोति न।
प्राणनाशः क्षणे दुःखं व्रतभङ्गश्चिरं भवे॥ ८७॥

अर्थ- धर्मात्मा पुरुषों को अपने ग्रहण किये हुए व्रत का भंग कभी नहीं करना चाहिए, चाहे प्राणों का नाश ही क्यों न हो जाये। क्योंकि प्राणों के नाश होने से तो उसी समय दुःख होता है, परन्तु व्रतभंग होने पर चिरकाल पर्यन्त संसार में असहनीय दुःख उठाने पड़ते हैं॥ ८७॥

प्रश्नकर्त्ता- पं० राजेशकुमार शास्त्री, इन्दौर।

जिज्ञासा- क्या ब्रह्मचारी भाइयों द्वारा धन एकत्र करना आगम के अनुसार उचित है?

समाधान- पूज्य आचार्य विद्यासागर जी महाराज के द्वारा प्रवचनों में मैंने कई बार सुना है कि **ब्रह्मचारियों को धन एकत्र नहीं करना चाहिए।** शास्त्रों में भी इसके विभिन्न प्रमाण पाये जाते हैं-

यशस्तिलकचम्पूगत उपासकाध्ययन (श्लोक ३८९) में इस प्रकार कहा है,

देह-द्रविण-संस्कार-समुपार्जनवृत्तयः।
जितकामे वृथा सर्वास्तत्कामः सर्वदोषभाक्॥

अर्थ- जिसने काम को जीत लिया, उसका देह का संस्कार करना, धन कमाना आदि सभी व्यापार व्यर्थ हैं, क्योंकि काम ही इन दोषों की जड़ है॥ ३८९॥

सागारधर्मामृत (अध्याय ६/३६) में इस प्रकार कहा है-

स्त्रीतश्चित्त निवृत्तं चेन्ननु वित्तं किमीहसे।
मृतमण्डनकल्पो हि स्त्रीनिरीहे धनग्रहः॥ ३६॥

अर्थ- हे मन, यदि तू निश्चित ही स्त्री से निवृत्त हो गया है, तो फिर धन को क्यों चाहेगा? क्योंकि स्त्री की इच्छा नहीं रहने पर धन को ग्रहण करना अथवा धन की इच्छा करना मरे हुए मुनष्यों को आभूषण पहनाने के समान व्यर्थ है।

भावार्थ- विषयसुख के लिए धन साधन है। स्त्री विषयसुख का मुख्य अवलम्बन है। महल, मकान, बाग-बगीचा आदि विषय सुखों के गौण साधन हैं। अतः विषयसुख का साधन स्त्री मानी गई है। यदि उसकी अभिलाषा से जिसका अन्तःकरण विमुख हो जायेगा, तो फिर विषयसुख के गौण साधनभूत धनादिक इच्छा की निष्फलता स्वयं हो जाती है। जब साध्य ही नहीं चाहिए तो फिर साधन की क्या जरूरत हे? जैसे मुर्दे को आभूषण पहनाकर सजाना व्यर्थ है, वैसे ही स्त्री से विरक्त पुरुष के लिए धन की इच्छा निरर्थक मानी जाती है। (टीका- आ० सुपार्श्वमती जी)

प्रश्नकर्त्ता- प्रवीणचन्द्र जैन, देहली।

जिज्ञासा- क्या क्षुल्लक मोटरकार या ट्रेन आदि सवारी में बैठ सकते हैं?

समाधान- २०वीं शताब्दी के उच्च कोटि के विद्वान् श्री रतनचन्द्र जी मुख्तार से, वर्तमान के उद्भट विद्वान् पं० जवाहरलाल जी शास्त्री भिण्डर ने यही प्रश्न पूछा था, जिसका उत्तर 'पं० रतनचन्द्र जैन मुख्तार- व्यक्तित्व और कृतित्व ग्रन्थ' में पृष्ठ ७१९ पर इस प्रकार दिया गया है, 'क्षुल्लक समस्त परिग्रह का त्यागी होता है। यदि वह सवारी में बैठता है, तो उसके किराये के लिए उसको पैसा अर्थात् परिग्रह रखना पड़ेगा तथा उस पैसे के लिए याचना करनी पड़ेगी। दूसरे, क्षुल्लक के सर्व प्रकार के आरम्भ का भी त्याग है, अतः यदि वह सवारी का उपयोग करता है, तो उसको आरम्भसम्बन्धी दोष लगता है। तीसरे, सवारी में बैठकर सामायिक आदि करने से क्षेत्रपरिमाण नहीं बनता, अतः सामायिक में दोष लगता है। सारतः क्षुल्लक को सवारी में नही बैठना चाहिए।

प्रश्नोत्तरश्रावकाचार में तो आठवीं आरम्भत्याग प्रतिमा को धारण करनेवालों के लिए भी सवारी पर चढ़ना निषेध किया है, कहा है-

रथाद्यारोहणं निन्द्यं स्थूलजीवविघातकम्।
प्राणान्तेऽपि न कर्तव्यं त्यक्तारम्भैः कदाचन॥ १०७॥

अर्थ- आरम्भत्याग प्रतिमा धारण करनेवाले व्रतियों के प्राण नष्ट होने पर भी स्थूल जीवों की हिंसा करनेवाले निंद्य रथ आदि सवारियों पर चढ़कर कभी नहीं चलना चाहिए।

आचार्य सूर्यसागर जी महाराज के सान्निध्य में संवत् २००७ में फिरोजाबाद में बहुत भारी उत्सव हुआ था

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिसमें मुनिसंघ विराजमान था, तथा बाहर से ७०-७५ व्रती भी पधारे हुए थे। उस सम्मेलन की चर्चा क्षुल्लक श्री गणेशप्रसाद जी वर्णी ने 'मेरी जीवन गाथा' में इस प्रकार लिखी है- ''इस व्रती सम्मेलन में एक विषय यह आया कि क्या क्षुल्लक वाहन पर बैठ सकता है? महाराज ने कहा कि जब क्षुल्लक पैसे का त्याग कर चुका है, तथा ईर्यासमिति से चलने का अभ्यास कर रहा है, तब वह वाहन पर कैसे बैठ सकता है? पैसे के लिए उसे किसी से याचना करनी पड़ेगी तथा पैसों की प्रतिनिधि जो टिकिट आदि है, वह अपने साथ रखनी पड़ेगी। आखिर विचार करो मनुष्य क्षुल्लक हुआ क्यों? इसीलिए तो हुआ कि इच्छाएँ कम हों? यातायात कम हो, सीमित स्थान में विहार हो। फिर क्षुल्लक बनने पर भी इन सब बातों में कमी नहीं आई, तो क्षुल्लक पद किसलिए रखा? --- यथार्थ में जो कौतुकभाव क्षुल्लक होने के पहले था, वह अब भी गया नहीं। यदि नहीं गया, तो कौन कहने गया था कि तुम क्षुल्लक हो जाओ ----। लोग कहते हैं कि दक्षिण के क्षुल्लक तो बैठते हैं? पर उनके बैठने से क्या वस्तुतत्व का निर्णय हो जावेगा? वस्तु का स्वरूप तो जो है, वही रहेगा। दक्षिण और उत्तर का प्रश्न बीच में खड़ा कर देना हित की बात नहीं।

उपर्युक्त प्रमाणों के अनुसार क्षुल्लक को किसी भी सवारी में बैठना बिल्कुल उचित नहीं है।

जिज्ञासा- किसी दिगम्बरजैन को दान दे या किसी अन्य मतवाले को दान दे, तो समान फल मिलेगा या अन्तर है?

समाधान- इस संबंध में शास्त्रों के निम्न प्रमाणों पर विचार करना योग्य है-

श्री धर्मसंग्रहश्रावकाचार में इस प्रकार कहा है-

एकोऽप्युपकृतो जैनो वरं नाऽन्ये ह्यनेकशः।
हस्ते चिन्तामणौ प्राप्ते को गृह्णाति शिलोच्चयान्॥ १७६॥

अर्थ- जैनधर्म के धारक एक भी भव्य पुरुष का उपकार करना अच्छा है, परन्तु हजारों मिथ्यादृष्टियों का उपकार करना अच्छा नहीं है। जैसे जब हाथ में चिन्तामणि रत्न आ जावे, तो फिर ऐसा कौन दुर्बुद्धि होगा जो उसे छोड़कर पत्थरों को स्वीकार करेगा? कोई नहीं करेगा।

स्फुरत्येकोऽपि जैनत्व-गुणो यत्र सतां मतः।
तत्राप्यजैनैः सप्पात्रैर्द्योत्यं खद्योतवद्रवौ॥ ५२॥
वरमेकोऽप्युपकृतो जैनो नान्ये सहस्त्रशः।
दलादिसिद्धान् कोऽन्वेति रससिद्धे प्रसेदुषि॥ ५३॥

अर्थ- जिस जैन में सज्जनों को प्रिय ऐसा एक भी जैनत्व गुण प्रकट है, उस जैन के सामने ज्ञान और तप से अधिक अजैन पुरुष, सूर्य के सामने जुगनू की तरह प्रकाशित होते हैं। ५२॥

उपकार किया हुआ एक भी जैन उत्कृष्ट है, जब कि अन्यमतवाले मिथ्यादृष्टि हजार भी अच्छे नहीं हैं। क्योंकि रस की सिद्धि करनेवाले पुरुष के प्राप्त हो जाने पर, सार रहित कृत्रिम सुवर्ण बनानेवाले पुरुषों की कौन खोज करता है?

श्री इन्द्रनन्दि सूरि विरचित नीतिसार समुच्चय ग्रन्थ में इसप्रकार कहा है-

तस्मै दानं प्रदातव्यं, यः सन्मार्गे प्रवर्तते।
पाखण्डिभ्यो ददद्दानं, दाता मिथ्यात्ववर्धकः॥ ४८॥

अर्थ- उसी को दान देना चाहिए जो सन्मार्ग (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्ररूप मोक्षमार्ग) में प्रवृत्ति करता हो। पाखण्डी को , जैनधर्म के विनाशक को दान नहीं देना चाहिए। क्योंकि पाखण्डी को, दिगम्बर धर्म के निन्दक को दान देनेवाला दाता मिथ्यामार्ग का पोषक अथवा वर्द्धक होता है।

उपर्युक्त सभी प्रमाणों से स्पष्ट होता है कि जब भी कोई दान देना हो, तब दिगम्बर जैन धर्म के प्रचार-प्रसार आदि के लिए ही दें। अन्य मत के लोगों को भोजन कराना, उनके मन्दिर, स्कूल, साधु आदि के लिए दान देना, कदापि उचित नहीं है। उसका फल न के बराबर होता है।

१/२०५, प्रोफेसर्स कॉलोनी,
आगरा (उ.प्र.)

कबीरवाणी

गुरु वेचारा क्या करै, हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी पढ़ा, पथर न भीजी कोर॥
जो दीसै सो विनसि है, नाम धरा सो जाय।
कबीर सोई तत गह्यो, सतगुरु दीन्ह बताय॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आपके पत्र

माननीय संपादक जी

'जिनभाषित' नवम्बर २००८ का अंक मिला। पृ० ८ पर प० पू० उपाध्याय श्री निर्भयसागर जी महाराज द्वारा लिखित 'आदिकाल की याद दिलाती दीवाली' भी पढ़ा। वैसे तो आप एवं प्रकाशक जी प्रखर मनीषी हैं, सामग्री को अवलोकित सम्यक् प्रकार से करते होंगे। फिर भी कुछ प्रश्न जिज्ञासा पैदा करते हैं।

१. पृ० ८, 'युग के आदि में ..... प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ स्वामी ने पत्थर से पत्थर रगड़कर चिंगारी द्वारा अग्नि का आविष्कार कराकर भोजन पकाने एवं रात्रि के अंधकार से बचने के लिए दीपक जलाने की शिक्षा दी।' क्या यह असंगत नहीं है। शास्त्रपरम्परा से द्रष्टव्य है।

२. हिन्दूधर्मानुसार दीपावली के प्रारंभ व प्रचलन को यहाँ विस्तार से प्रकाशित करना सम्यग्दर्शन की विराधना का कारण नहीं हैं? क्या इससे जैनसमाज में जैनधर्म-दर्शन-परम्परा से मेल न खानेवाले कथानक प्रचारित नहीं होंगे ?

उपर्युक्त विचारणीय है।

पत्रिका श्रेष्ठ रूप में अनवरत प्रकाशित है। आपको व प्रकाशक जी व समस्त प्रबन्ध को बधाई।

शिवचरणलाल जैन

श्याम भवन, बजाजा मैनपुरी - २०५००१

(उ.प्र.)

खेद

लेख के ऊपर एक उपाध्यायपदधारी मुनिश्री का नाम देखकर मैंने समय बचाने के लिए उसे पढ़ना आवश्यक नहीं समझा। अपने इस प्रमाद के लिए मुझे खेद है।

सम्पादक : रतनचन्द्र जैन

आदरणीय सम्पादक जी

जिनभाषित (नवम्बर २००८) में स्वाध्याय की महत्ता को रेखांकित करते हुए शोध-पूर्ण संपादकीय पढ़कर हार्दिक प्रसन्नता हुई। जैनसंस्कृति ने स्वाध्याय को श्रेष्ठतम तप के रूप में स्वीकार किया है। इस का ही परिणाम है कि सम्पूर्ण जैनसमाज शतप्रतिशत रूप से साक्षर है।

पूज्य मुनि श्री प्रणम्यसागर जी द्वारा लिखित 'षडावश्यक आज क्यों आवश्यक?' आलेख का पठन-पाठन हमारे जीवन में अत्यधिक उपयोगी है। पूज्य गुरुवर ने छह दैनिक कर्त्तव्यों की आधुनिक ढंग से सहज एवं सरल व्याख्या की है। उन्होंने अपने आलेख में पाश्चात्य संस्कृति के सुप्रसिद्ध लेखक डॉ० कैरल के प्रार्थना की महत्ता संबंधी लेख का उद्धरण दिया है। इससे स्पष्ट है कि हमारे मुनिजन भारतीय संस्कृति के साथ-साथ पाश्चात्य संस्कृति का भी अध्ययन, मनन एवं चिंतन करते हैं।

इसी प्रकार पण्डित सुमतचन्द्र दिवाकर ने अपने आलेख 'कर्म हमारे विधाता नहीं' के माध्यम से हमें पुरुषार्थ करने की प्रेरणा प्रदान की है।

हमें यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के कालजयी महाकाव्य मूकमाटी पर लिखित समालोचनासंग्रह ग्रन्थ **'मूकमाटी-मीमांसा'** प्रकाशित एवं लोकार्पित हो गया है। इस ग्रन्थ के संपादक सुप्रसिद्ध विद्वान् डॉ० राममूर्ति त्रिपाठी ने ग्रन्थ को साकार रूप देने में पूज्य मुनिश्री अभयसागर जी की महत्त्वपूर्ण भूमिका की सराहना की है और उनकी उद्भट क्षमता, आस्था एवं निष्ठा की प्रशंसा की है। सम्पूर्ण राष्ट्र के शीर्षस्थ स्तर पर विराजमान समालोचक विद्वान् का यह कथन चतुर्विध संघ एवं सम्पूर्ण जैनसमाज को साहित्यिक प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्रदान करता है।

कृपया इसी प्रकार से परिवार के प्रत्येक सदस्य के लिए उपयोगी जानकारी अपनी पत्रिका में देकर इस पत्रिका की ऊँचाई को बढ़ाने में सदैव अपना अमूल्य अवदान प्रदान करते हुए हमें अनुगृहीत करें।

सुरेश जैन

३०, निशात, कॉलोनी, भोपाल

माननीय संपादक जी

दिसम्बर 2008 के जिनभाषित में जिज्ञासा-समाधान के अन्तर्गत एक यह जिज्ञासा की गई है कि पंचपरमेष्ठी की आरती में क्या **'छट्ठी ग्यारह प्रतिमाधारी, श्रावक बन्दों आनन्दकारी'** यह बोलना उचित है? और इसके समाधान में आचार्य कुन्दकुन्दकृत सुत्तपाहुड की **'णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे'** इस गाथा (क्र०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

23) को उद्धृत करते हुए कहा गया है कि कुन्दकुन्द के अनुसार "नग्नवेश ही मोक्षमार्ग है, शेष सब उन्मार्ग हैं। ग्यारह प्रतिमाधारी एलक, क्षुल्लक, क्षुल्लिका और आर्यिकाएँ सभी वस्त्रधारी होने के कारण मोक्षमार्गी नहीं हैं, अतः पूजा, आरती के योग्य भी नहीं हो सकते।"

आचार्य कुन्दकुन्द की उक्त गाथा का यह अर्थ समीचीन प्रतीत नहीं होता। आचार्य कुन्दकुन्द ने जो वस्त्रधारियों को उन्मार्गी कहा है, वह श्वेताम्बर आदि सम्प्रदायों के साधुओं को दृष्टि में रखकर कहा है। यह टीकाकार श्रुतसागर सूरि के निम्नलिखित वचनों से सिद्ध है-

"नग्नो वस्त्राभरणरहितो विमोक्षमार्गः ज्ञातव्यः। शेषाः सितपटादीनां मार्गाः सर्वेऽपि उन्मार्गकाः कुत्सिता मिथ्यारूपा मार्गा जानीया विद्वद्भिरित्यर्थ।"

अर्थ— जो वस्त्राभरणरहित नग्नत्व है, उसे विद्वानों को मोक्षमार्ग जानना चाहिए, शेष श्वेताम्बर आदि सम्प्रदायों के जितने भी मार्ग हैं, उन सबको उन्मार्ग, कुत्सितमार्ग, मिथ्यामार्ग समझना चाहिये।

इन वचनों से सिद्ध है कि आचार्य कुन्दकुन्द ने मिथ्यादृष्टियों के मार्ग को ही उन्मार्ग कहा है, सम्यग्दृष्टियों के मार्ग को नहीं। आर्यिका, एलक, क्षुल्लक एवं क्षुल्लिका न केवल सम्यग्दृष्टि होते हैं, अपितु श्रावकधर्म के पालक भी होते हैं, उन्हें उन्मार्गी कैसे कहा जा सकता है? यदि श्रावकधर्म उन्मार्ग होता, तो आचार्य अमृतचन्द्र उसे पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (मोक्षपुरुषार्थ की सिद्धि का साधन) न कहते और उसे सागारधर्म तथा परम्परया मुनिधर्म और मोक्ष का साधक भी न कहा जाता। यद्यपि श्रावक संयमधारी न होने से निश्चयनय से मोक्षमार्गी नहीं कहा जा सकता, तथापि मोक्षमहल की सम्यग्दर्शनरूप प्रथम सीढ़ी पर उसके चरण स्थित होने के कारण वह व्यवहारनय से मोक्षमार्गी ही है, उन्मार्गी नहीं।

यद्यपि यह सत्य है कि पञ्चपरमेष्ठी ही वन्दनीय हैं, अतः एलक, क्षुल्लक एवं आर्यिका वन्दना के योग्य नहीं हैं, इच्छाकार के ही योग्य हैं, तथापि वे उन्मार्गी नहीं हैं। और दीपकपूजा तो सचित्तपूजा है, अतः उसका तो तेरापन्थ आम्नाय में निषेध है। इसलिए तेरापन्थ में तो पंचरमेष्ठी की भी आरती निषिद्ध है। यही कारण है कि तेरापन्थी-पूजापद्धति में दीपक के स्थान में नारियल की पीली चिटकें भगवान् को चढ़ायी जाती हैं।

इंजी० धर्मचन्द्र वाझल्य
ए-92, शाहपुरा, भोपाल-462 039
दूरभाष 0755-2424755

श्रीसेवायतन द्वारा आयोजित व्यक्तित्व विकास कार्यक्रम सम्पन्न

हाल ही में श्री सेवायतन संस्थान द्वारा श्री सम्मेद शिखर जी में मधुबन पंचायत के 14 गाँवों में से चुनित 140 लोगों के व्यक्तित्व-विकास कार्यक्रम के अंतर्गत जीवन जीने की कला एवं योगशिक्षा कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। एक सप्ताह तक चले इस कार्यक्रम से प्रशिक्षित युवा महिलाएँ एवं युवक पूर्ण शाकाहारी एवं मद्यपान रहित बने एवं संकल्प लिया कि पावन तीर्थराज की पवित्रता बनी रहे, वे सभी इसके लिए श्रीसेवायतन के साथ पूरी निष्ठा से जुड़े रहेंगे।

इस अवसर पर 10 महिलाओं को सिलाई मशीनें श्री राजकुमार जैन धनबाद एवं उनकी धर्मपत्नी ने वितरित कीं। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि श्री राजकुमार जी जैन धनबादवालों के पूर्ण सहयोग से एक सप्ताह का 140 लोगों का यह कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस आदर्श कार्यक्रम में लगी सम्पूर्ण राशि श्री राजकुमार जी ने वहन की।

श्रीसेवायतन मधुबन पारसनाथ को दान देने पर आयकर में छूट

श्रीसेवायतन संस्थान मधुबन पारसनाथ को आयकर आयुक्त धनबाद ने जाँचोपरांत आयकर अधिनियम की धारा 80 जी. के अंतर्गत दान-दाताओं को दान की राशि देने में आयकर छूट देने की स्वीकृति प्रदत्त की है। यहाँ पर उल्लेखनीय है कि श्रीसेवायतन संस्थान गिरिडीह जिले के पीरटांड प्रखण्ड अंतर्गत मधुबन पंचायत के 14 गाँवों को सर्वांगीण विकास के लिए चुना है और इस संस्थान द्वारा मानवसेवा एवं ग्रामीणविकास के अनेकानेक सृजनात्मक कार्यक्रम कर एक मिसाल पैदा की है, जो अपने आप में एक ऐतिहासिक उदाहरण है। श्रीसेवायतन की पिछली बैठक में अनेक कार्य किये जाने का निर्णय लिया गया है।

विमल (सेठी) गया
प्रचार मंत्री- श्रीसेवायतन, मधुबन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिहारी की गज़ल
उम्र जलवों में बसर हो

स्व० श्री बिहारीलाल जी जैन

श्री बिहारीलाल जी जैन मध्यप्रदेश के सिवनी नगर में एक दिगम्बर जैन परिवार में जन्मे (23 मई 1905) तथा अमेरिका के वर्जीनिया प्रान्त के ब्लूफील्ड नगर में चिर निद्रा में सोए। (5 अप्रैल 1992) उनकी लेखनी की भव्यता पर उन्हें न केवल मातृभाषा हिंदी में, बल्कि अँगरेजी कविताओं पर भी विश्व प्रसिद्ध सर्व्वोच्च सम्मान 'गोल्डन पोयट' (स्वर्णकवि) पुरस्कार 2 सितम्बर 1989 को वाशिंगटन हिल्टन में प्रदान किया गया।

उम्र जलवों में बसर हो ये जरूरी तो नहीं।
हर शबे गम की सहर हो ये जरूरी तो नहीं॥
न पियो, मांस न खाओ, परहेज़गार रहो।
गैर को मार कर खाओ, ये जरूरी तो नहीं॥

नींद तो दर्द के बिस्तर पै भी आ जाती है।
नींद लाने को दवा खाओ, जरूरी तो नहीं॥
कर्म का जीव से संबंध तो अनादि है।
पर वो अनंत तक भी हो, ये जरूरी तो नहीं॥

सही अकीदा अमल, इल्म तो नियामत हैं।
इश्क में उम्र बसर हो, ये जरूरी तो नहीं॥
विषय-कषाय घटाना ही शुद्धि मारग है।
पाप करके उसे छोड़ो ये जरूरी तो नहीं॥

साफ जल से नहाना, जिस्म की सफाई है।
पहले कीचड़ में लिपट लो, ये जरूरी तो नहीं॥
कमाई धर्म की शुभ में लगे, ये पुण्य ही है।
पाप कर पैसा कमा, 'धर्म' जरूरी तो नहीं॥

फर्ज इंसान का बेशक नज़ात हासिल हो।
तपे उल्फत में ही जलना, ये जरूरी तो नहीं॥
जिस्म से रूह गैर है, ये 'बिहारी', समझो।
परिस्तिश जिस्म की ताउम्र जरूरी तो नहीं॥

'बिहारी की गजलें' से साभार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

UPHIN/2006/16750

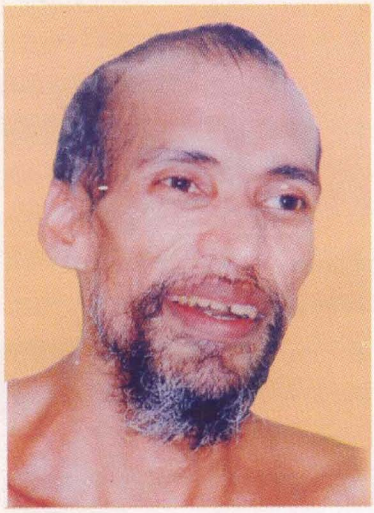

प्रवचन के पॉइन्ट

मुनि श्री क्षमासागर जी : संस्मरण प्रसंग

• सरोजकुमार

इंदौर जैनसमाज के सर्वमान्य नेता पद्मश्री बाबूलाल पाटोदी की यह इच्छा सदैव रही है, कि अच्छे उद्‌बोधन देनेवाले विद्वान् जैनमुनियों का, नगर के सर्वसाधारण नागरिकों की सभाओं में, प्रवचन हो। श्री पाटोदी ने मुनिश्री विद्यानंदजी के अनेक प्रवचन नगर के विभिन्न स्थानों पर आयोजित किए थे, जिन्हें सुनने विशाल जन-समुदाय एकत्रित होता था। वर्ष 1996में इंदौर में संपन्न मुनि श्री क्षमासागर जी के चातुर्मास के समय जब पाटोदी जी ने देखा, कि मुनिश्री के प्रवचन अत्यंत प्रभावशाली होते हैं और उनकी अभिव्यक्ति का फलक अत्यंत विस्तृत होता है, तब उनके मन में विचार आया कि मुनिश्री के प्रवचन नगर के विभिन्न समुदायों के नागरिकों के बीच भी होना चाहिए। चातुर्मास प्रारंभ होने के कुछ ही समय बाद से यह सभी को ज्ञात होता जा रहा था, कि मुनिश्री न केवल प्रखर वाग्मी हैं, अपितु उद्‌भट विद्वान् भी हैं। पाटोदी जी ने मुनिश्री से जवाहर मार्ग स्थित वैष्णव महाविद्यालय के प्रांगण में प्रवचन हेतु स्वीकृति प्राप्त की। प्रवचन की पूर्व संध्या श्री पाटोदी मुनिश्री की वंदना हेतु उपस्थित हुए। दूसरे दिन सुबह होनेवाले मुनिश्री के प्रवचन को लेकर संभवतः श्री पाटोदी के मन में कुछ बातें होंगी। अतः बातों ही बातों में वे मुनिश्री को सुझाने लगे कि महाराज, आप प्रवचन के पूर्व अपना अत्यंत प्रभावशाली ओंकार का उच्चारण अवश्य निनादित कीजियेगा। लम्बी साँस में आपके मुख से ओंकार ध्वनि चारों दिशाओं को बाँध लेती है।

मुनिश्री ने शांतभाव से यह बात सुनी, और यथावत् मौन बैठे रहे। श्री पाटोदी ने पुनः कहा, महाराज, आप अपने प्रवचन में अंगुलिमाल की कथा अवश्य सुनाइयेगा। कंचनबाग के प्रांगण में इस कथा को सुनकर सभी उपस्थितों की आँखें भींग गई थीं। मुनिश्री इस सुझाव के बाद भी कुछ नहीं बोले। श्री पाटोदी ने मुनिश्री के प्रवचनों के विषयों को लेकर कुछ और सुझाव भी दिए। मुनिश्री गंभीर मुद्रा में आदर्श श्रोता की तरह सारे सुझाव सुनते रहे। फिर श्री पाटोदी के सुझावों के बाद, अपनी चुप्पी तोड़ते हुए अत्यंत सरल भाव से बोले, 'पाटोदी जी! और भी बता दीजिए, मुझे सभा में और क्या-क्या बोलना है....?' श्री पाटोदी मुनिश्री के कथन में व्याप्त चुटकी सुनकर पानी-पानी हो गए, और यही कह पाए, 'महाराज, आपकी जय हो।'

मनोरम, 37 पत्रकार कॉलोनी, इन्दौर, म.प्र.

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, 210, जोन-1, एम.पी. नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं 1/205 प्रोफेसर कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित। संपादक : रतनचन्द्र जैन।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org